

वर्ष ६४

संख्या ६

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

(संस्करण १,१०,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर भाद्रपद, वि० सं० २०४७, श्रीकृष्ण-संवत् ५२१६, सितम्बर १९९०

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१-कमलात्मिका भगवती श्रीमहालक्ष्मी	५६९	१०-जितेन्द्रिय बनो (संत श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज) ..	५७०
२-कल्याण (शिव)	५७०	११-देवत्वकी विशेषता (डॉ० श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय')	५७१
३-शोकनाशके उपाय (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	५७१	१२-राम ते अधिक राम कर दासा (श्रीश्यामनारायणजी शास्त्री, रामायणी, साहित्यरत्न)	५७३
४-शुद्ध ज्ञानकी प्राप्तिके उपाय (ब्रह्मलीन श्रीमगनलाल हरिभाईजी व्यास)	५७३	१३-गीता-तत्त्व-चिन्तन (श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	५७५
५-रे मन ! चल तू प्रभुके तीर [कविता] (श्रीविष्णुगुप्तजी 'विष्णु')	५७५	१४-गौका महत्त्व क्यों ?	५७६
६-राधा-कृष्णकी अभिन्नता तथा राधा-प्रेमकी विशुद्धता (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	५७६	१५-स्वप्नसे वैराग्य	५७९
७-वसुधैव कुटुम्बकम् (महन्त श्रीदीनबन्धुदासजी)	५७९	१६-जा दिन संत पाहुने आवत [कविता]	५८१
८-साधकोंके प्रति—(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	५८१	१७-पढ़ो, समझो और करो	५८४
९-प्रदक्षिणा (परिक्रमा) तथा स्वस्तिकका रहस्य	५८४	१८-मनन करने योग्य	
		१९-श्रीराम-जन्मभूमि (राधेश्याम खेमका)	
		२०-श्रीभगवन्नाम-जपकी शुभ सूचना	
		२१-श्रीभगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना	

चित्र-सूची

- १-प्रणवस्वरूप भगवान् विष्णु
२-श्रीश्रीमहालक्ष्मी

(इकरंगा)
(रंगीन)

मुख-पृष्ठ

प्रत्येक	साधारण	} जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत्-चित्-आनन्द भूमा जय जय ॥ जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥ जय विराट् जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥	} कल्याणका वार्षिक मूल्य (डाक-व्ययसहित) भारतमें ४४.०० रु० विदेशमें ६ पौंड अथवा १० डालर
अङ्कका	मूल्य		
भारतमें	२.०० रु०		
विदेशमें	२० पेंस		

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

सम्पादक—राधेश्याम खेमका

रामदास जालान द्वारा गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित



श्रीश्रीमहालक्ष्मी

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवैर्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः ।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥

वर्ष ६४ } गोरखपुर, सौर भाद्रपद, वि० सं० २०४७, श्रीकृष्ण-सं० ५२१६, सितम्बर १९९० ई० { संख्या ६
पूर्ण संख्या ७६३

कमलात्मिका भगवती श्रीमहालक्ष्मी

सिन्दूरारुणकान्तिमब्जवसति सौन्दर्यवारां निधिं
कोटीराङ्गदहारकुण्डलकटीसूत्रादिभिर्भूषिताम् ।
हस्ताब्जैर्वसुपात्रमब्जयुगलादर्शौ वहन्ती परा-
मावीतां परिचारिकाभिरनिशं ध्यायेत् प्रियां शार्ङ्गिणः ॥

कमलपर विराजमान, सिन्दूरके समान रक्तवर्णकी कान्तिसे युक्त, सौन्दर्यकी सागरभूता, मुकुट, बाजूबंद, हार, कुण्डल और करधनी आदि आभूषणोंसे समलङ्कृत, अपने दो हाथोंमें कमल, एक हाथमें दर्पण तथा एक हाथमें रत्नपूर्ण पात्र धारण किये हुई, परिचारिकाओंसे घिरी, भगवान् विष्णुकी प्राणप्रिया भगवती श्रीश्रीमहालक्ष्मीका अहर्निश ध्यान करना चाहिये ।

सौ०भा० १—

कल्याण

संसारमें जो कुछ भी ऐश्वर्य, माधुर्य, सौन्दर्य, शक्ति, श्री, सुख, सम्पत्ति, स्नेह, प्रेम, अनुराग, भक्ति, ज्ञान, विज्ञान, रस, तत्त्व, गुण, माहात्म्य आदि देखते हो, वह सब वहींसे आता है जहाँ इसका अटूट भण्डार है। अनादिकालसे अबतक इस भण्डारमेंसे लगातार इन सारी वस्तुओंका वितरण हो रहा है और अनन्त कालतक होता रहेगा, परंतु इस महान् वितरणसे उस भण्डारका एक तिलभर स्थान भी खाली न होगा। वह सदा पूर्ण, अनन्त और असीम ही रहेगा। जानते हो वह भण्डार कहाँ है और उसका क्या स्वरूप है? नहीं जानते, जानते होते तो भला उस अनन्त भण्डारको छोड़कर क्षुद्र और तुच्छ-सी चीजोंपर क्यों मरे फिरते?

वह भण्डार है भगवान्, और वे सभी जगह हैं, उनका महत्त्व और उनका तत्त्व जाननेकी चेष्टा करो, जरा-सी भी उनके महत्त्वकी झाँकी हो जायगी, उनके तत्त्वका ज्ञान हो जायगा, तो फिर तुम्हें दूसरी कोई चीज सुहावेगी ही नहीं। उनके सौन्दर्य-माधुर्यकी जरा-सी छया भी कहीं दीख जायगी तो फिर जगत्का सारा सौन्दर्य-माधुर्य चित्तसे सदाके लिये हट जायगा।

तुम जो उनका चिन्तन छोड़कर विषय-चिन्तन करते हो, एकमात्र उन्हें ही पानेकी कामना न रखकर विषयोंकी कामना करते हो, उन्हींके बलपर सर्वथा निर्भर न रहकर जगत्के जड बलका आश्रय ग्रहण करना चाहते हो, उनके कृपाकणसे ही अपनेको परम धनी न मानकर दुनियाकी दिखावटी और क्षण-क्षणमें नाश होनेवाली धन-सम्पत्तिका मोह करते हो, उनके दासत्वका महान् पद पानेकी अनन्त कीर्तिका तिरस्कारकर दीवानी दुनियामें नाम कमाना चाहते हो और उनके नित्य सांनिध्यमें रहनेपर भी अपनेको असहाय समझते हो, इससे यही सिद्ध होता है कि तुमने उनका महत्त्व और प्रभाव कुछ भी नहीं जाना।

विश्वास करो और समझो कि वे सच्चिदानन्दधन हैं, नित्य हैं, परम पवित्र हैं, सब ईश्वरोंके ईश्वर हैं—परम प्रभु हैं, सबमें, सब जगह, सर्वदा और सर्वथा व्याप्त हैं, सारा उन्हींका पसारा है, वे तुम्हारे अपने हैं, तुम उनके निजजन हो, परम आत्मीय

हो, वे नित्य तुम्हारे साथ—सोते-जागते, उठते-बैठते, खाते-पीते सदा ही रहते हैं, एक क्षणके लिये भी तुमसे अलग नहीं होते। उन्हें जानो, देखो और पहचानो। तुम्हारे सारे अभाव मिट जायँगे। तुम्हारे सब दुःखोंका सदाके लिये नाश हो जायगा। तुम्हें परम शान्ति मिल जायगी।

उन परम प्रियतम सच्चिदानन्दधन प्रभुको जानने, देखने और पहचाननेका सबसे पहला साधन है परम श्रद्धा। जिन अनुभवी महात्माओंने भगवान्को जाना, देखा और पहचाना है, उनके वचनोंपर श्रद्धा करो। शास्त्रोंने भगवान्को जानने, देखने और पहचाननेके जो साधन बतलाये हैं, उनपर श्रद्धा करो। ज्यों-ज्यों तुम्हारी श्रद्धा बढ़ेगी, त्यों-ही-त्यों तुम्हें भगवान्का प्रकाश समीप आता हुआ दिखायी देगा। तुम अपने अंदर एक प्रकारके आनन्द और शान्तिका अनुभव करोगे, जिससे साधन और भजनमें तुम्हारा मन अधिकाधिक लगता जायगा। और ज्यों-ज्यों भजन बढ़ेगा, त्यों-ही-त्यों तुम भगवान्को कुछ-कुछ जानने, देखने और पहचानने लगोगे। साधनकी जननी श्रद्धा है। श्रद्धा है तो सब कुछ है, श्रद्धा नहीं तो कुछ भी नहीं।

याद रखो, श्रद्धासे सच्चा भजन होता है और भजन होनेसे ही सच्ची श्रद्धा भी होती है। सत्संगके द्वारा श्रद्धा बढ़ाओ और साथ ही भजन करके श्रद्धाको उज्ज्वल, निर्मल सात्त्विक और अनन्य बना लो। फिर जो भजन होगा, वह भगवान्को तुरंत प्राप्त करानेवाला होगा। भजनमें बड़ी शक्ति है। भजनकी सीधी विधि है भगवान्को निरन्तर याद रखना और उन्हें याद रखते हुए उनकी सेवाके भावसे ही संसारके आवश्यक कार्य करना। उनका स्मरण हृदयमें सदा अखण्डरूपसे बना रहना चाहिये। अखण्ड स्मरण होने लगे तो समझो, तुमपर भगवान्की बड़ी भारी कृपा है, अब तुम उस कृपाके बलसे निहाल होनेहीवाले हो। जबतक अखण्ड स्मरण न हो, तबतक बार-बार अभ्यासके द्वारा स्मरणकी चेष्टा करो। नाम-जपका नियम कर लो तथा मनको और जगहोंमें जानेसे रोकनेकी सतत चेष्टा करते हुए उस भगवान्में लगाते रहो। अभ्यास करते-करते भगवान्की कृपासे मन भगवान्में लग ही जायगा।—‘शिव’



शोकनाशके उपाय

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

दुःख अथवा शोकके दो ही हेतु होते हैं—प्रियवियोग एवं अप्रियसंयोग अथवा इष्टका विनाश एवं अनिष्टकी प्राप्ति। इन्हीं दो हेतुओंसे मनुष्यको दुःख, शोक, चिन्ता अथवा व्याकुलता होती है। इन्हीं दो बातोंको लेकर सारा संसार दुःखी हो रहा है, ऐसा कहा जाय तो भी अत्युक्ति न होगी। कोई-कोई तो इनके कारण इतने अधिक दुःखी हो जाते हैं कि उन्हें सारा संसार अन्धकारमय दीखने लगता है, उन्हें चारों ओरसे निराशाके बादल घेर लेते हैं, शोकके मारे दिन-रात उनकी छाती जला करती है, दिनमें चैन नहीं पड़ता और रातको नींद नहीं आती, शरीर सूखकर काँटा हो जाता है, खाना-पीना हराम हो जाता है—यहाँतक कि कुछ लोगोंको तो जीवन भारी हो जाता है और वे घुल-घुलकर शरीर छोड़ देते हैं। कुछ लोग तो और भी आगे बढ़ जाते हैं—वे विषादिका प्रयोग करके, जलमें डूबकर, फाँसी लगाकर अथवा आगमें जलकर प्राण त्याग देते हैं। प्रायः लोग स्त्री, पुत्र, धन, मान, कीर्ति अथवा स्वास्थ्य आदि इष्ट पदार्थोंके नाश हो जाने अथवा किसी मुकद्दमेमें फँस जाने, किसी भयानक रोगके शिकार हो जाने या किसी प्राणसङ्कटके उपस्थित हो जानेपर ही ऐसा करते हैं। ऐसे पुरुषोंके चित्तको शान्त करनेका क्या उपाय है, इसीपर कुछ विचार किया जाता है।

वास्तवमें बात यह है कि ज्ञान, भक्ति अथवा विवेक-विचार किसी भी दृष्टिसे शोक करना अज्ञानके सिवा और कुछ नहीं है। अतएव मनुष्यको न तो धन-मकान, जमीन-जायदाद आदि जड वस्तुओंके लिये और न स्त्री, पुत्र आदि चेतन प्राणियोंके लिये शोक करना चाहिये। जिनका विनाश हो चुका है, उनके लिये तो शोक करना बिल्कुल ही बेकार है, बल्कि जिनका विनाश होनेवाला है, उनके लिये भी बुद्धिमान मनुष्यको शोक नहीं करना चाहिये। भगवान् श्रीकृष्णने भी गीताके आरम्भमें अर्जुनको शोककी निवृत्तिके लिये ज्ञानकी दृष्टिसे यही उपदेश दिया है। भगवान् कहते हैं—

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।

गतासूनगतासुंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ॥

(२।११)

‘हे अर्जुन ! तू शोक न करने योग्य मनुष्योंके लिये शोक करता है और पण्डितोंके-से वचनोंको कहता है, परंतु जिनके प्राण चले गये हैं, उनके लिये और जिनके प्राण अभी नहीं गये हैं अर्थात् जो मरनेवाले हैं, उनके लिये भी पण्डितजन शोक नहीं करते।’

ऊपरके श्लोकसे भगवान्का तात्पर्य यह है कि किसीके लिये किसी प्रकार किञ्चिन्मात्र भी शोक कदापि न करना चाहिये।

ज्ञानके सिद्धान्तके अनुसार दो ही पदार्थ माने गये हैं—(१) जड और (२) चेतन। इन्हींको दूसरे शब्दोंमें (१) असत् और (२) सत् भी कह सकते हैं। सत् वह है जिसका नाश न हो और असत् अथवा मिथ्या वह है जो कायम नहीं रहता—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।

(गीता २।१६)

उपर्युक्त वचनसे भगवान्ने यह सिद्ध किया है कि इन्द्रियोंद्वारा दीखनेवाले जितने पदार्थ हैं, वे सब जड, अनित्य, क्षणिक एवं नाशवान् हैं—कुछ गहरा विचार करनेपर प्रतीत होता है कि वे स्वप्नवत् हैं और स्वप्नवत् होनेसे वे वास्तवमें ही नहीं। इसलिये जो ये नाशवान् जड पदार्थ हैं, उनके लिये शोक करना किसी प्रकार भी नहीं बनता।

दूसरा जो चेतन-तत्त्व है, वह नित्य है, सत् है—उसका कभी विनाश नहीं होता। इसलिये उसके लिये भी शोक करना नहीं बनता। बालिके मारे जानेपर उसकी पत्नी ताराको भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने यही उपदेश दिया था। वे क्या कहते हैं, इसे गोस्वामी तुलसीदासजीके शब्दोंमें सुनिये—

छिति जल पावक गगन समीरा । पंच रचित अति अधम सरीरा ॥
प्रगट सो तनु तव आगे सोवा । जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा ॥

(राम० किष्कि० १०।२-३)

‘पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु—इन पञ्चतत्त्वोंसे यह अत्यन्त अधम शरीर बना हुआ है। वह शरीर तो तुम्हारे सामने पड़ा है और जीव नित्य है, फिर तुम किसके लिये रोती हो?’

ऊपरके वचनोंसे भी भगवान्ने यही दिखलाया है कि शरीर विनाशी है और आत्मा नित्य—अविनाशी है, इसलिये दोनों ही दृष्टिसे शोक करना नहीं बनता। जो वस्तु विनाशी है, नाश होनेके पूर्व भी उसे नष्ट ही समझना चाहिये, क्योंकि वह वस्तु एक-न-एक दिन अवश्य नष्ट होगी, स्थिर नहीं रहनेकी। इस प्रकार इष्ट वस्तुके वियोगमें शोक नहीं करना चाहिये, यह बात ज्ञानकी दृष्टिसे बतायी गयी।

इसी प्रकार अनिष्टकी प्राप्तिमें भी ज्ञानकी दृष्टिसे शोक करना नहीं बनता। इस बातको स्वप्नके दृष्टान्तसे समझाया जाता है। स्वप्नमें किसीको कोई रोग हो जाय, कैद या बन्धन हो जाय अथवा जलप्लावन आदि कोई अन्य संकट उपस्थित हो जाय या बाघ, भालू, सर्पादिसे भय प्राप्त हो तो नेत्र खुलनेपर उस अनिष्टकी सत्ता नहीं रहती। जब नेत्र खुलनेपर—जाग्रतमें उस वस्तुकी सत्ता नहीं रहती, तब विचारसे ऐसा समझमें आता है कि स्वप्नके समय भी उसका अभाव ही था—अज्ञानके कारण निद्रादोषसे बिना हुए ही उसकी प्रतीति हुई थी, जिसके कारण उस स्वप्नका देखनेवाला दुखी हो गया था। उपर्युक्त स्वप्नके दृष्टान्तसे यह मानना चाहिये कि यदि जाग्रतमें हमें अपने मनके प्रतिकूल किसी अनिष्ट वस्तुकी प्राप्ति होती है तो वह भी वास्तवमें असत् ही है, क्योंकि कुछ समयके बाद उस वस्तुका अभाव हो जाता है और जिस वस्तुका अभाव हो जाता है वह वास्तवमें ही नहीं, केवल प्रतीत होती है। ज्ञान होनेके उत्तरकालमें तो इस दृश्य जगत्का अत्यन्त अभाव हो जाता है। ऐसा समझकर विवेकी पुरुषको अनिष्टकी प्राप्तिमें भी शोक नहीं करना चाहिये।

ऊपर ज्ञानकी दृष्टिसे इष्ट वस्तुके विनाश और अनिष्टके संयोगमें शोक करनेका अनौचित्य बतलाया। अब भक्तिकी दृष्टिसे शोक करनेकी अनावश्यकता बतलाते हैं। ऊँचे भक्तोंकी बात तो जाने दीजिये, साधारण कोटिके भक्तोंको भी यदि उन्हें भक्तिका सिद्धान्त मान्य है, तो उपर्युक्त दोनों हेतुओंमेंसे किसी भी हेतुको लेकर शोक नहीं करना चाहिये। क्योंकि भक्तिके सिद्धान्तमें जड-चेतन सभी पदार्थ, यहाँतक कि भक्त स्वयं भी—अर्थात् उसका शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि—सब कुछ भगवान्के ही होते हैं। ऐसी स्थितिमें यदि किसीका पुत्र मर गया, स्त्री जाती रही, पति मर गया, धन नष्ट हो गया,

इज्जत-आबरू चली गयी, पैठ मारी गयी, तो उसे ऐसा समझना चाहिये कि वह वस्तु कहीं गयी नहीं, क्योंकि जब सब कुछ भगवान्का है और भगवान् सर्वव्यापी हैं—वे सब जगह और सब कालमें हैं, तब जो वस्तु हमसे छिन जाती है, वह भगवान्के राज्यको छोड़कर कहीं अन्यत्र नहीं चली जाती, भगवान्के ही भण्डारमें रहती है। जब सब कुछ भगवान्का है और भगवान् ही जड-चेतन सबके मालिक हैं, तब वे यदि अपनी किसी वस्तुको एक जगहसे हटाकर दूसरी जगह ले जाते हैं, तो हमें उसके लिये दुखी क्यों होना चाहिये? इसी बातको दृष्टान्तके द्वारा समझानेकी चेष्टा की जाती है।

एक सेठकी कई जगह दूकानें हैं अथवा सरकारी डाकखाने जगह-जगह हैं। यदि सेठ अपनी एक दूकानका माल दूसरी जगह भेजता है अथवा सरकार यदि एक पोस्ट-आफिसका रुपया दूसरे पोस्ट-आफिसमें भेजता है, तो मुनीमको अथवा पोस्टमास्टरको इसके लिये रोनेकी अथवा मन मैला करनेकी क्या आवश्यकता है? यदि वे ऐसा करते हैं तो यह उनकी सरासर मूर्खता एवं अन्याय है। मालिककी खुशी है, वह अपनी चीजोंको चाहे जहाँ रखे। सच्चा भक्त अथवा नौकर तो वह है जो मालिक जैसा कहे वैसा करे, मालिककी राजीमें ही राजी रहे। इसके विपरीत जो नौकर मालिककी चीजको मालिकके माँगनेपर देनेमें आनाकानी करता है अथवा दुखी होता है, वह सच्चा नौकर नहीं, नमकहराम है। मुनीम दूकानके मालको और पोस्टमास्टर डाकखानेके खजानेको अपना समझने लगे और बदनीयतीसे अपने ही पास रखना चाहे तो वह दण्डका पात्र होता है। इसी प्रकार जो मनुष्य भगवान्की चीजको अपनी मानकर भगवान्के माँगनेपर देनेमें आनाकानी करता है अथवा मन मैला करता है, वह बेईमान है, भक्त नहीं। भक्तको तो प्रभुके विधानमें सदा संतुष्ट रहना चाहिये। भगवान्की प्रत्येक क्रिया निर्भान्त एवं हितसे भरी हुई होती है और जो कुछ होता है, भगवान्की आज्ञासे ही होता है—ऐसा समझकर उसे प्रत्येक घटनामें प्रसन्न रहना चाहिये।

भक्तोंकी बात तो जाने दीजिये, संसारमें जो नेकनीयत मनुष्य होते हैं, वे भी ऐसे स्थलोंपर शोक नहीं करते। मान लीजिये कोई मनुष्य अपने किसी विश्वस्त मित्र अथवा बन्धुके पास धरोहरके रूपमें कुछ रुपया अथवा गहने इत्यादि रख देता

है और आवश्यकता होनेपर जब उन्हें वापिस ले जाता है तो जो ईमानदार होता है वह उस धरोहरको वापिस देते समय न आनाकानी करता है और न उस धरोहरके हाथसे चले जानेपर शोक ही करता है, बल्कि जिसकी जो वस्तु थी, उसे उसके हवाले करके वह सुखी होता है और ऐसा समझता है मानो उसके सिरसे एक बोझा उतर गया। शोक करनेका तो उसके लिये कोई प्रश्न ही नहीं उठता। किसी मित्रकी धरोहरको अपने पास रखकर उसे लौटानेमें जो आनाकानी करता है, वह तो बेईमान है और विश्वासघाती कहलाता है। इसी प्रकार स्त्री, पुत्र, धन आदि भगवान्की दी हुई धरोहरको जो अपनी मानकर वापस देनेमें आनाकानी करता है अथवा भगवान्के

द्वारा जबर्दस्ती वापस ले लिये जानेपर रोता है, वह भगवान्का विश्वासपात्र नहीं समझा जाता, भक्त तो उसे कैसे कहा जाय ? उसे तो भगवान्की वस्तु भगवान्को सौंप देनेमें प्रसन्नता होनी चाहिये और ऐसा करके चिन्तासे मुक्त हो जाना चाहिये।

यदि कोई स्त्री, पुत्र आदिको भगवान्की वस्तु न समझे तो भी उसे यह समझकर प्रसन्नता होनी चाहिये कि मेरी स्त्री, मेरा पति अथवा पुत्र भगवान्के पास उनकी रक्षामें पहुँच गया। जितनी सँभाल उसकी भगवान् कर सकते हैं, उतनी वह कर ही नहीं सकता था। ऐसी दशामें अपनी प्यारी वस्तुको अपनेसे कहीं अधिक समर्थ एवं प्रेमी रक्षककी देखरेखमें रखकर उसे शोकके बदले प्रसन्नता ही होनी चाहिये। (क्रमशः)

शुद्ध ज्ञानकी प्राप्ति के उपाय

(ब्रह्मलीन श्रीमगनलाल हरिभाईजी व्यास)

ज्ञानप्राप्तिके लिये बहुत पढ़ना और बहुत जानना— इस वासनाको धीरे-धीरे कम करना चाहिये। यह संसार असत्य—नाशवान् है। इसमें स्थित पदार्थोंके लिये धीरे-धीरे वासना कम करनी चाहिये।

ईश्वरके नाम-जपमें, इस जपके परिणाममें शास्त्रका ऊँचे-से-ऊँचा ज्ञान प्रकाशित हो रहा है। पुस्तकका ज्ञान शुद्ध, अशुद्ध अथवा मिश्रित होता है। अनुष्ठानके पश्चात् हृदय-ज्ञान—दैवी ज्ञान केवल शुद्ध होता है। इसलिये पुस्तकों और सामयिकोंमेंसे ज्ञान प्राप्त करनेमें व्यर्थ समय गँवानेके बदले ईश्वरके नामका जप करना ही श्रेष्ठ है।

मनुष्यको चाहिये कि पिता, पुत्र, पति होनेके अभिमानको गला दे। कौन पिता, कौन पुत्र ! यह सब स्वप्नका खेल है। इसीसे शान्ति रखनी चाहिये और आनन्दमें रहना चाहिये। जिससे क्लेश हो, उसका त्याग करना चाहिये।

साधक केवल भगवन्नाम-जप करता रहे तो इससे उसके सारे अभीष्ट सिद्ध होते जायँगे। चोरी, हिंसा, परस्त्री-सम्बन्ध आदिका परित्याग करे और अहिंसा-धर्मका पालन करे। अमुक वस्तु मुझे मिले, यह इच्छाका स्वरूप है और यही संसारका मूल है। किसी भी वस्तुकी इच्छा न हो, यह मोक्षका द्वार है।

मुखाकृति अन्तःकरणकी स्थितिको परिलक्षित कराती है। इस तरह जब जिस वस्तुमें अहंता, ममता हो जाती है, तब उसकी प्राप्ति, वृद्धि अथवा नाश होनेसे मन विशेष प्रभावित होता है और उसका प्रभाव मुखपर बदलती हुई कान्तिके द्वारा अभिव्यक्त होता है। कोमल दृष्टि, स्नेहपूर्ण वाणी, मुखकी सौम्यतापूर्ण कान्ति, प्रसन्नता, निरपेक्षता—ये सब अखण्ड सुखकी प्राप्ति के सूचक हैं।

जबतक पाप क्षीण न हो जायँ और चित्त-शुद्धि न हुई हो, तबतक साधकको चाहिये कि वह भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले जगद्गुरु परमेश्वरके साकार-स्वरूपका भजन-पूजन करे। इस भक्तिके प्रभावसे ही पापमुक्त होकर और चित्तशुद्धि होनेपर साधक निराकार परम तत्त्वमें स्वाभाविक रूपसे स्थित हो जायगा। विषयोंमें रुचि, क्रोध, भय, शोक, मोह, लोभ और अन्तःकरणको क्षुब्ध करनेवाली अशान्ति—ये सब अशुद्ध चित्तके लक्षण हैं। भक्ति करते हुए सत्य, अहिंसा, समानता, अस्तेय और अपरिग्रहका सेवन करना चाहिये और विषय-वृत्तिको कम करते रहना चाहिये।

मुमुक्षु अपना स्वधर्मरूपी कर्म करे और जप, ध्यान, दान आदिका सेवन करे। काम्य कर्म, निषिद्ध कर्म और चित्तको चञ्चल तथा क्षुब्ध करनेवाले कर्मोंका त्याग करे।

आत्माके अतिरिक्त अन्य पदार्थोंमें आसक्ति उत्पन्न होना ही कामनाजन्य संकल्प है। कर्ममात्रका त्याग तो देहधारी कर ही नहीं सकता। इससे मात्र कर्मफलमें आसक्तिका त्याग करना आवश्यक है। मनको जीतनेसे सुख प्राप्त होता है, परंतु भोगोंसे सच्चा सुख नहीं मिलता। अहं या कर्ता होनेके अभिमानका त्याग अखण्ड सुख देता है।

वीर्यका नाश होनेसे बुद्धिका नाश होता है। वीर्य ही जीवन है। वीर्य और बुद्धिका प्रगाढ़ सम्बन्ध है।

जो दृश्य रूपमें देखे जाते हैं, उन सबका नाश होता है और नाश होनेके पश्चात् फिरसे उनकी उत्पत्ति होती है। परंतु जिसका न तो नाश होता है और न तो जिसकी उत्पत्ति होती है, वही तत्त्व सत्य है और वही तत्त्व साधकका अपना स्वरूप है।

खूब शान्तिमें रहना चाहिये, हमेशा कार्यरत नहीं रहना चाहिये। चित्तको शान्ति देनी चाहिये। दिन-रात उथल-पुथल करते रहनेसे क्या मिलनेवाला है? चित्तकी अविकल शान्ति ही परम अभीष्ट है।

जो कर्म हम अपने गुरुजनों, संतों अथवा सज्जनोंके सामने प्रकट-रूपसे नहीं कर सकते, उन कर्मोंको एकान्तमें करनेमें भी दोष है।

ईश्वर दयालु है। उस भगवान्‌के कौनसे गुण गाये? इसलिये सम्पूर्ण विकल्पोंको छोड़कर उस अन्तर्यामीके शरणमें जाना ही इष्ट है। उस दीन-दयालुके शरणमें जाना चाहिये। जिन बातोंमें शङ्का हो, उनमें कुछ बोध मिले, मार्गदर्शन मिले ऐसी ईश्वरसे प्रार्थना करनी चाहिये। ज्यों-ज्यों साधककी श्रद्धा उस अन्तर्यामी दीन-दयालुमें बढ़ेगी, त्यों-त्यों उसकी शङ्काओं और तर्कोंका जाल समाप्त हो जायगा। खूब जप करें। उसमें खूब श्रद्धा रखें। वह तो दासका भी दास है, आज्ञाकारी सेवक है, हमेशा आज्ञा-प्राप्तिकी बाट जोहता है।

मनु महाराजका एक श्लोक याद रखने योग्य है। इसका जीवनमें उपयोग करें—

दृष्टिपूतं न्यसेत् पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्।

सत्यपूतां वदेद् वाचं मनःपूतं समाचरेत्॥

(मनु० ६।४६)

समस्त जीवनके कर्तव्योंको मनु महाराजने इस श्लोकमें प्रस्तुत कर दिया है। दृष्टिसे जाँचकर कदम रखना चाहिये,

पानीको कपड़ेसे छानकर पीना चाहिये, सत्यसे शुद्ध कर वाणी बोलनी चाहिये और मनसे अथवा विचारोंसे जो कार्य शुद्ध प्रतीत हो, उसीका आचरण करना चाहिये। कोई भी क्रिया करनेसे पहले बुद्धिसे विचारना चाहिये, उस क्रियाके गुण-दोष देखने चाहिये। यदि क्रिया गुणसहित और दोषरहित हो तो करना चाहिये, अन्यथा नहीं। गुण और दोषका निर्णय आत्माके उद्धारकी दृष्टिसे करना चाहिये।

आत्मोद्धार-मार्गके लिये श्रद्धा एक मुख्य साधन है। गुरु और सत्-शास्त्रमें बुद्धि स्थिर करें और श्रद्धा रखें। भगवन्नाम-जपसे कल्याण होता है। जिन्हें गुरु और शास्त्रोंमें श्रद्धा है, वे ही इन बातोंको अच्छी तरह समझ सकते हैं।

साधक हमेशा ऐसे अभ्यासमें रत रहे और ऐसी आकाङ्क्षा करे, जिससे भवसागरकी पीड़ा और भय दूर हो। कुटुम्बका, परिवारके लोगोंका उनके ऋणानुबन्धके अनुसार जीवन व्यतीत होगा। कोई भी व्यक्ति किसीके भी प्रारब्धमें रंचमात्र परिवर्तन नहीं कर सकता।

वसिष्ठ महाराजके उपदेशके पश्चात् भगवान् श्रीराम-चन्द्रजीने चौदह वर्ष अभ्यास किया, शुकदेवजीने महाराज जनक आदिके उपदेशके पश्चात् दस वर्षतक अभ्यास किया। बिना अभ्यासके ज्ञान स्थिर नहीं होता।

साधक किसी भी प्रकारकी वासना न करे और ऐसी भी इच्छा न करे कि दूसरे उसके विचारों और आदर्शोंका अनुसरण करें। जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति अपना शरीर स्वयं वहन करता है, उसी प्रकार प्रत्येकको अपना प्रारब्ध भोगना ही पड़ता है।

हर्ष और आनन्द दोनों भिन्न-भिन्न भाव हैं। हर्ष अन्यकी प्राप्तिमें और सांनिध्यमें होता है। जहाँ कुछ भी जाना नहीं जा सकता, कुछ भी दीख नहीं पड़ता, कुछ भी सुनायी नहीं देता, कोई विचार नहीं आता, वहाँ अपार शान्तिके घनत्वमें आनन्दका अनुभव होता है, पर उसका वर्णन नहीं हो सकता।

भक्त सबसे पहले सगुण साकारकी उपासना करता है, उसका भजन करता है। यदि इस भक्तिमें फलकी आकाङ्क्षा न हो तो ज्यों-ज्यों भक्ति बढ़ती है, त्यों-त्यों भोगकी इच्छा और जगत्की वासना घटती जाती है। भक्ति करते हुए भोगवासना न घटे तो वह उत्कृष्ट भक्ति नहीं है, उसमें दम्भका बाहुल्य है। ऐसा भक्त आदरणीय नहीं होता। भक्ति करते हुए भोगवासना

अवश्य छूट जाती है। व्यसन-त्याग इसका प्रथम सोपान है। अधर्म-कर्मका नाश इसका दूसरा सोपान है और धीरे-धीरे धर्मरूपी वासना भी समाप्त हो जाती है। सगुण भक्तिका तीसरा सोपान है आजीविकाकी चिन्तासे मुक्त होना। इसका भार ईश्वर स्वयं उठाते हैं, किसी अन्यको निमित्त बनाकर अथवा किसीके हृदयमें प्रेरणा बनकर। इस प्रकार भक्तिके परिपक्व होनेपर और इहलोककी चिन्ताएँ समाप्त होनेपर परलोककी भी चिन्ता समाप्त हो जाती है और अन्तमें सगुण मूर्ति हर घटमें, हर पत्तेमें प्रतिभासित होती है। नरसिंह मेहताने अन्तमें यही ललकार लगायी—‘ब्रह्म लटका करे, ब्रह्म पासे’—ब्रह्म ब्रह्मके पास इतराता है, उसे रिझाता है।

साधक योग, भक्ति, ज्ञान अथवा कर्म किसी भी एक मार्गको पकड़े और निष्काम उपासना करे या साधना करे,

लाभकी आकाङ्क्षा किये बिना सतत उपासना या साधनामें लगा रहे तो साधककी इच्छा हो या न हो तो भी उसे मोक्ष मिलेगा, ज्ञान भी मिलेगा। वास्तविक ज्ञान प्राप्त होते ही साधकको इस समस्त संसारके सभी पदार्थ एक-एक आत्माके विवर्तके रूपमें, विलासके रूपमें प्रतिभासित होते हैं और अन्तमें कोई पदार्थ दिखायी ही नहीं देता। दिन-के-दिन निकल जाते हैं, नींद नहीं आती, जाग्रत्-अवस्थामें चेतना नहीं रहती और इस प्रकार काल बीतता रहता है। यही ज्ञानकी श्रेष्ठ भूमिका है और इसके परिपक्व होनेपर जीवनमुक्तावस्थाकी प्राप्ति होती है और फिर प्रारब्धके अधीन शरीर-यात्रा चलती रहती है। नये प्रारब्धका उदय नहीं होता है और प्रारब्धके समाप्त होनेपर शरीर-पतनके साथ विशुद्ध कैवल्यकी प्राप्ति होती है।

(अनुवादक—प्रा० भूदेवप्रसाद हरिलालजी पंड्या)

रे मन ! चल तू प्रभुके तीर

(श्रीविष्णुगुप्तजी ‘विष्णु’)

जीवन पाप-पंकमें बीता, लिया न प्रभुका नाम ।
 ‘मैं’ के मदमें रहा घूमता, किया न तेरा काम ॥
 अन्त समयमें आया द्वारे हर लो मनकी पीर ।
 रे मन ! चल तू प्रभुके तीर ॥
 भ्रमित रहा मायाके घरमें, यह मेरा-यह तेरा ।
 कोई न जगसे गया साथमें, सब कुछ रैन-बसेरा ॥
 तेरा तुझको अर्पण करने आया शरण अधीर ।
 रे मन ! चल तू प्रभुके तीर ॥
 इच्छा घोड़े भाग रहे हैं, गया न मनसे काम ।
 राग-द्वेषका मेला लगता, जगमें आठों याम ॥
 समय पंखपर चढ़कर जाता, मानव अधम शरीर ।
 रे मन ! चल तू प्रभुके तीर ॥
 छोड़ जगतके माया-बन्धन, भज लो प्रभुका नाम ।
 सत्कर्मोंसे जीवन रचकर, जाना उसके धाम ॥
 हाथ उठाकर दयाधर्मका दर्शन दो रघुवीर ।
 रे मन ! चल तू प्रभुके तीर ॥

राधा-कृष्णकी अभिन्नता तथा राधा-प्रेमकी विशुद्धता

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

[गताङ्क पृ०-सं० ५३९से आगे]

श्रीकृष्ण गोपियोंके नित्य ऋणी हैं। भगवान् श्रीकृष्णने अपना यह सिद्धान्त घोषित किया है—‘ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।’ (जो मुझको जैसे भजता है, उसे मैं वैसे ही भजता हूँ।) इसका यह तात्पर्य समझा जाता है कि भक्त जिस प्रकारसे तथा जिस परिमाणके फलको दृष्टिमें रखकर भजन करता है, भगवान् उसको उसी प्रकार तथा उसी परिमाणमें फल देकर उसका भजन करते हैं—सकाम, निष्काम (मुक्तिकाम), शान्त, दास्य, वात्सल्य, सख्य आदिकी जिस प्रकारकी कामना-भावना भक्तकी होती है, भगवान् उसे वही वस्तु प्रदान करते हैं, परंतु यहाँ गोपियोंके सम्बन्धमें भगवान्के इस सिद्धान्त-वाक्यकी रक्षा नहीं हो सकी। इसके प्रधान कारण तीन हैं—१-गोपीके कोई भी कामना नहीं है, अतएव श्रीकृष्ण उसे क्या दें। २-गोपीके कामना है केवल श्रीकृष्ण-सुखकी, श्रीकृष्ण इस कामनाकी पूर्ति करने जाते हैं तो उनको स्वयं अधिक सुखी होना पड़ता है। अतः इस दानसे ऋण आदि भी बढ़ता है। ३-जहाँ गोपियोंने सर्वत्याग करके केवल श्रीकृष्णके प्रति ही अपनेको समर्पित कर दिया है, वहाँ श्रीकृष्णका अपना चित्त बहुत जगह बहुत-से प्रेमियोंके प्रति प्रेमयुक्त है। अतएव गोपीप्रेम अनन्य और अखण्ड है, कृष्णप्रेम विभक्त और खण्डित है। इसीसे गोपीके भजनका बदला उसी रूपमें श्रीकृष्ण उसे नहीं दे सकते और इसीसे अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए वे कहते हैं—

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजं

स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः।

या माभजन् दुर्जगेश्चलः

संवृश्य तद् वः प्रतियातु साधुना ॥

(श्रीमद्भा० १०।३२।२२)

‘गोपियो ! तुमने मेरे लिये घरकी उन बेड़ियोंको तोड़ डाला है, जिन्हें बड़े-बड़े योगी-यति भी नहीं तोड़ पाते। मुझसे तुम्हारा यह मिलन, यह आत्मिक संयोग सर्वथा निर्मल और सर्वथा निर्दोष है। यदि मैं अमर शरीरसे, अमर जीवनसे अनन्त कालतक तुम्हारे प्रेम, सेवा और त्यागका बदला

चुकाना चाहूँ तो भी नहीं चुका सकता। मैं सदा तुम्हारा ऋणी हूँ। तुम अपने सौम्य स्वभावसे ही, प्रेमसे ही मुझे उद्धरण कर सकती हो। परंतु मैं तो तुम्हारा ऋणी ही हूँ।’

प्रेममार्गी भक्तको चाहिये कि वह अपनी समझसे तन, मन, वचनसे होनेवाली प्रत्येक चेष्टाको श्रीकृष्णसुखके लिये ही करे। जब-जब मनके प्रतिकूल स्थिति प्राप्त हो, तब-तब उसे श्रीकृष्णकी सुखेच्छाजनित स्थिति समझकर परम सुखका अनुभव करे। यों करते-करते जब प्रेमी भक्तका केवल श्रीकृष्णसुख-काम अनन्यतापर पहुँच जाता है, तब श्रीकृष्णके मनकी बात भी उसे मालूम होने लगती है। गोपियोंके ‘श्रीकृष्णानुकूल जीवन’ में यह प्रत्यक्ष है। वे उनके जीवनको अपना सब कुछ बना लेते हैं। श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं—

सहाया गुरवः शिष्या भुजिष्या बान्धवाः स्त्रियः।

सत्यं वदामि ते पार्थ गोप्यः किं मे भवन्ति न ॥

मन्माहात्यं मत्सपर्यां मच्छ्रद्धां मन्मनोगतम्।

जानन्ति गोपिकाः पार्थ नान्ये जानन्ति तत्त्वतः ॥

‘गोपियाँ मेरी सहायिका, गुरु, शिष्या, दासी, बान्धव, स्त्री हैं। अर्जुन ! मैं तुमसे सत्य ही कहता हूँ कि गोपियाँ मेरी क्या नहीं हैं अर्थात् सब कुछ हैं। अर्जुन ! मेरी महिमाको, मेरी सेवाको, मेरी श्रद्धाको और मेरे मनके भीतरी भावोंको गोपियाँ ही जानती हैं, दूसरा कोई नहीं जानता।’

श्रीकृष्णसुखजीवना, श्रीकृष्णप्राणा, श्रीकृष्णपरिनिष्ठित-मति गोपियोंके सम्बन्धमें श्रीचैतन्यचरितामृतमें कहा गया है—
निजेन्द्रिय-सुख हेतु कामेर तात्पर्य। कृष्णसुखेर तात्पर्य गोपीभाव वर्ध ॥
निजेन्द्रिय-सुख-वाञ्छा नहे गोपीकार। कृष्ण-सुख-हेतु करे संगम-विहार ॥
आत्मसुख-दुःख गोपी ना करे विचार। कृष्ण-सुख-हेतु करे सब व्यवहार ॥
कृष्ण बिना आर सब करि परित्याग। कृष्ण-सुख-हेतु करे शुद्ध अनुराग ॥

यह गोपीस्वरूपकी एक छोटी-सी झाँकीकी छायामात्र है। इन गोपियोंमें सर्वशिरोमणि हैं वृषभानुदुलारी श्रीराधाजी। गोपियाँ श्रीराधाकी कायव्यूहरूपा हैं। गोपियोंका परम आदर्श और परम सेव्य श्रीराधामें ही निहित है। श्रीराधारूपी दर्पणमें ही श्रीकृष्णका पूर्ण दर्शन प्राप्त होता है और वह दर्शन भी

श्रीकृष्णको ही होता है। दर्पणका दृष्टान्त भी एकदेशीय ही है, क्योंकि दर्पण केवल प्रतिबिम्बको—छायाको ग्रहण करता है, परंतु प्रेमीका प्रेमभरा हृदय तो बिम्बको—मूल वस्तुको ही ग्रहण करता है। प्रेमीके हृदयमें परम प्रियतम श्रीकृष्णके रूपकी छाया नहीं पड़ती, वहाँ तो वे स्वयं सदा सुखपूर्वक निवास करते हैं। वाल्मीकिजीने स्थाननिर्देश करते हुए भगवान् श्रीरामको उनके नित्य-निवासके लिये निज घर बतलाया था—

जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु।

बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निज गेहु॥

(राम० अयो० दो० १३१)

प्रेमका स्वरूप बतलाते हुए कहते हैं—

सर्वथा ध्वंसरहितं सत्यपि ध्वंसकारणे।

यद् भावबन्धनं यूनोः स प्रेमा परिकीर्तितः॥

ध्वंसका कारण समुपस्थित होनेपर भी जो ध्वंस नहीं होता, जो कभी रुकता, घटता और मिटता नहीं, प्रतिक्षण बढ़ता रहता है, उसे 'प्रेम' कहते हैं। प्रेमकी ज्यों-ज्यों प्रगाढ़ता होती है, त्यों-त्यों उसमें नये-नये रूपोंका आविर्भाव होता रहता है। रसशास्त्रमें उन्हींको विभिन्न नामोंसे बतलाया गया है। प्रेम प्रगाढ़ होते-होते क्रमशः स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभावका स्वरूप प्राप्त करता है। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुरा रतिमें भी उत्तरोत्तर उत्कृष्टता और पूर्णता है। मधुरा रति अत्युत्कृष्ट है। इसमें अनुरागकी बड़ी वृद्धि होती है। यही अनुराग प्रगाढ़ होकर 'भाव' तथा 'महाभाव' बन जाता है। जैसे मधुरा रतिमें शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य—चारों रतियोंका समावेश रहता है, वैसे ही 'महाभाव'में भी स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग तथा भाव सम्मिलित रहते हैं।

'राग' की स्थितिमें श्रीकृष्णको प्राप्त करनेकी सम्भावना होनेपर असीम और भयंकर-से-भयंकर दुःखमें भी सुखकी प्रतीति होती है। तीव्र प्रेम-पिपासाके कारण इष्ट वस्तुमें होनेवाली परमाविष्टताका नाम ही 'राग' है। इसी रागकी परिपक्वता होनेपर 'अनुराग' होता है। अनुरागमें श्रीकृष्णका स्वरूप प्रतिक्षण नया-नया दिखायी देता है। जितना ही देखा-सुना जाता है, उतना ही अनुराग बढ़ता है और जितना अनुराग बढ़ता है, उतनी ही रूपकी नव-नवरूपता बढ़ती चली

जाती है।

श्यामसुन्दरमें नित्य नव-सौन्दर्यका दर्शन करनेवाली एक गोपी दूसरी नयी गोपीसे कहती है—

सखी री ! यह अनुभवकी बात।

प्रतिपल दीखत नित नव सुंदर, नित नव मधुर लखात ॥

छिन छिन बढ़त रूप गुन माधुरि, छिन छिन नूतन रंग।

छिन छिन नित नव आनंद धारा, छिन छिन नई उमंग ॥

नित नव अलकनि की छबि निरखत अलि-कुल नित नव लाजै।

नित नव सुकुमारता मनोहर अंग अंग प्रति राजै ॥

नित नव अंग सुगंध मधुर अति मनहि मत् करि डारत।

नित नव दृष्टि सुधामयि जन के ताप असेष निवारत ॥

नित नव अरुनाई अधरनि की, नित नूतन मुसुव्यान।

नित नूतन रस-सुधा-प्रवाहिनि मधु मुरली की तान ॥

नित नूतन तारुन्य, ललित लावन्य नित्य नव बिकसै।

नित नव आभा बिबिध बरन की पिय के तनु तें निकसै ॥

कछुवै होत न बासी कबहुँ, नित नूतन रस बरसत।

देखत देखत जनम सिरान्यो, तऊ नैन नित तरसत ॥

अनुरागकी पूर्ण परिणति या निस्सीमता—महाभावकी समीपवर्तिनी प्रेमकी स्थितिका नाम 'भाव' है। भावकी पराकाष्ठा ही 'महाभाव' है। महाभाव सूर्यके सदृश है। सूर्यके दो स्वभाव हैं—जिसके साथ सूर्यका सम्पर्क होता है, उसके अन्धकारका नाश कर देना और अपनी शुभ किरणमालासे उसे स्नान करा देना। इसी प्रकार 'महाभाव' भी भगवान् श्रीकृष्णकी असीम कृपासे जिसके हृदयमें उदित हो जाता है, उसके हृदयमें अनादिकालसे स्थित 'स्वसुखतात्पर्य'-रूप अन्धकारको वह सदाके लिये हर लेता है और निज सम्बन्धी जनमात्रके भीतर-बाहरको नित्य परमानुरागमय बना देता है।

महाभावकी 'रूढ़' और 'अधिरूढ़'—दो अवस्थाएँ हैं।

महाभावकी जिस अवस्थामें सात्त्विक भाव उद्दीप्त हो उठते हैं, उसे 'रूढ़' महाभाव कहते हैं। गोपी-प्रेममें इस रूढ़-भावकी अभिव्यक्ति होती है। यह 'रूढ़-महाभाव' श्रीकृष्णकी पटरानियोंके लिये अति दुर्लभ है। यह तो केवल व्रजदेवियोंके द्वारा ही संवेद्य है, व्रजसुन्दरियोंमें ही सम्भव है।

मुकुन्दमहिषीवृन्दैरप्यसावतिदुर्लभः ।

व्रजदेव्येकसंवेद्यो

महाभावाख्योच्यते ॥

जिसमें रूढ़भावोक्त समस्त अनुभावोंसे सात्त्विक भाव किसी विशिष्ट दशाको प्राप्त हो जाते हैं, उसे 'अधिरूढ़' महाभाव कहते हैं। श्रीराधा इस अधिरूढ़ महाभावकी घनीभूत प्रत्यक्ष मूर्ति हैं। श्रीराधाके प्रेमका नाम ही 'अधिरूढ़ महाभाव' है। इस अवस्थामें श्रीकृष्णके मिलन और विरहजनित सुख और दुःखोंका साथ-ही-साथ अतुलनीय रूपमें उदय होता है।

इस अधिरूढ़ 'महाभाव'के दो प्रकार हैं—'मोदन' और 'मादन'। 'मोदन' महाभाव श्रीकृष्णमें भी होता है। श्रीराधारानीकी विरह-व्याकुल स्थितिको भी 'मोदन' या 'मोहन' कहते हैं। 'मोहन'-अवस्थाको दिव्योन्माद भी कहा जाता है। 'मादन' महाभाव श्रीराधाकी ही एकमात्र सम्पत्ति है। ह्लादिनी शक्तिकी परिपूर्ण परिणति ही 'मादन' है। इसमें श्रीराधारानी नित्य अनवच्छिन्न मिलनानन्दका अनुभव करती हैं।

श्रीकृष्णके नित्य नवीन माधुर्यके प्रादुर्भावका कारण श्रीराधा ही हैं। श्रीराधाका दुर्लभ प्रेम श्रीकृष्णकी अप्रतिम माधुर्यराशिको सर्वतोभावसे केवल ग्रहण ही नहीं करता, ग्रहण करके वह उस माधुर्यको और भी विशेषरूपसे उज्ज्वल तथा अनवरत उज्ज्वलतर करता रहता है। श्रीकृष्णमाधुर्यके नित्य नवीनत्वकी प्रकाशभूमि है श्रीराधाकी नित्यवर्धनशील उत्कण्ठा। श्रीराधाका प्रेम विभु होकर भी नित्य वर्धनशील है और श्रीकृष्णका माधुर्य नित्य वस्तु होकर भी नित्य नवायमान है। श्रीकृष्णका सांनिध्य ही श्रीराधा-प्रेमकी वर्धनशीलता है और श्रीराधाका सांनिध्य ही श्रीकृष्णमधुरिमाकी नित्य नवायमानता है। यह महाभावकी लीला अनन्तकालतक चलती ही रहती है। श्रीकृष्णनिष्ठ मधुरिमा और श्रीराधानिष्ठ उत्कण्ठा—दोनों ही असीम और अनन्त हैं। श्रीराधारानी श्रीकृष्ण-माधुरीका आस्वादन नित्य-निरन्तर सम्पूर्णरूपसे करती रहती हैं, तो भी उस माधुर्यका कहीं अन्त तो आता ही नहीं, वह उत्तरोत्तर अपने मधुर स्वरूपमें तथा परिमाणमें बढ़ता ही रहता है और श्रीराधाकी माधुर्यास्वादनकी पिपासा भी उत्तरोत्तर बढ़ती रहती है।

यह 'राधा-कृष्ण'का नित्य-विहार अनादिकालसे अनन्त-कालतक नित्य-निरन्तर चलता ही रहता है। श्रीराधाभाव दिव्यातिदिव्य प्रेम-माधुर्य-सुधा-रसका एक अगाध अनन्त असीम महासमुद्र है। उसमें नित्य नयी-नयी अनन्त दिव्य

अमृतमयी मधुरिमा तथा महिमामयी अनन्त वैचित्र्यमय महातरङ्गें उठती रहती हैं। यह राधाभावका दिग्दर्शन भी राधाभाव-महासागरकी किसी एक तरङ्गका सीकर मात्र ही है। प्रातःस्मरणीय आचार्यों तथा प्रेमी महात्माओंने उनके जो विभिन्न रूपोंके दर्शन और वर्णन किये हैं, वे सभी सत्य हैं। श्रीराधाके असीम तथा अनन्त महिमामय स्वरूप तथा तत्त्वकी, उनके आनन्द और प्रेमकी, उनके श्रीकृष्णमिलन और विरहकी व्याख्या मुझ-सरीखा तुच्छ जीव कैसे कर सकता है। उनकी एक-एक तरङ्गमें अनन्तकालतक निवास तथा विचरण किया जा सकता है।

यों श्रीराधा श्रीकृष्णकी ही अभिन्नस्वरूपा हैं। भगवान्का आनन्दस्वरूप ही श्रीराधाके रूपमें अभिव्यक्त है। श्रीराधा-श्रीकृष्ण नित्य एक और अभिन्न हैं। श्रीराधा श्रीकृष्णकी प्रेयसी हैं, श्रीराधा श्रीकृष्णकी आराधिका हैं, उनकी भक्ता हैं, श्रीराधा श्रीकृष्णकी आराध्या-उपास्या हैं। श्रीराधा विश्वजननी हैं, विश्वमयी हैं, विश्वस्वरूपा हैं, विश्वातीता हैं। श्रीराधा योगमाया हैं, दैवी माया हैं, निजमाया हैं। श्रीराधा श्रीकृष्णकी शक्ति हैं। यह शक्ति ही शक्तिमान् श्रीकृष्णकी आत्मा है। श्रीराधा कवियोंकी काव्य-सामग्री हैं। श्रीराधा सबकी आराध्या हैं, श्रीराधा अनिर्वचनीय हैं, श्रीराधा अचिन्त्य हैं।

मेरे एक राधा नाम अधार ॥

कोउ देखत निज रूप ब्रह्म पर निराकार अबिकार ।

कोउ करि निज तादात्म्य आत्म महँ, जो सम सर्वाधार ॥

कोउ द्रष्टा देखत प्रपंच जिमि मिथ्या स्वप्न-बिकार ।

कोउ निरखत नित दिव्य ज्योति हिय परम तत्त्व साकार ॥

कोउ कुंडलिनी कौं जाग्रत करि षट् चक्रनि करि पार ।

पहुँचत सिखर सहस दल ऊपर, जोग सिद्धि को सार ॥

कोउ अनहद धुनि सुनत दिवस निसि अजपा जाप सँभार ।

कोउ निष्काम कर्म रत जोगी, कोउ नित करत बिचार ॥

कोउ कमलापति, कोउ गिरिजापति नाम रूप उर धार ।

भक्त-कल्पतरु राम-कृष्ण कोउ सेवत अति सत्कार ॥

हैं जडमति अति मूढ़ हठीलो नटखट निपट गैवार ।

राधे राधे रटैं निरंतर मानि सार को सार ॥

श्रीवृषभानुदुलारी कीर्तिदाकुमारीकी जय !

(समाप्त)

वसुधैव कुटुम्बकम्

(महन्त श्रीदीनबन्धुदासजी)

देवभूमि भारतमें एक शाश्वत, मृत्युंजयी, कालनिरपेक्ष, सार्वभौम संस्कृतिका अखण्ड प्रवाह विद्यमान है। इसका स्वल्प भी आचरण मनुष्यके लिये जीवन और जगत्के रहस्योंको खोल देता है, जिससे मनुष्य प्रबुद्ध बन जाता है। ऋषि-महर्षियों, साधु-संतोंका यह महान् उपकार है कि उन्होंने लोकशिक्षण-हेतु, 'वसुधैव कुटुम्बकम्'—सम्पूर्ण विश्वको ही अपना परिवार मानकर अत्यन्त उदात्त भावना एवं उत्तम आदर्शका प्रचार-प्रसार किया। जीवन और जगत्के रहस्योंको सुलझानेके लिये भारतीय उपलब्धियाँ आज भी संसारके लिये चिन्तन एवं अन्वेषणका विषय बनी हुई हैं। सुखी, शान्त, समृद्ध एवं संतुलित जीवनके लिये आवश्यक निर्दिष्ट सिद्धान्त प्रतिपादित कर मर्यादाओंकी उत्तम व्यवस्था इस भारतदेशमें सनातन कालसे चली आ रही है और इसका सम्पूर्ण विश्वमें प्रचार-प्रसार हुआ।

जीवनको साङ्गोपाङ्ग समग्र और संतुलित परिभाषा देनेमें भारतीय दृष्टिबोध संसारमें अपना सर्वोपरि स्थान रखता है। यही इस मिट्टीकी विशेषता है और महानता है। विश्वकी अन्यान्य जीवन-प्रणालियोंमें अनेक उतार-चढ़ाव आये और उनमें आमूल-चूल परिवर्तन हो गया। आधुनिक सुख-सुविधाओंसे सम्पन्न एवं समृद्ध कई देश आज भी नयी-नयी प्रणालियोंका अवलम्बन लेते हैं, छोड़ते हैं, किंतु कोई कारगर परिणाम सामने नहीं आये हैं। अशान्ति, अतृप्ति एवं असंतुलनमें भटकता हुआ जीवन संसार-व्यापी उथल-पुथलके रूपमें व्यक्त होता दिखायी दे रहा है, नित्य नये आयाम गढ़े जाते हैं, फिर शीघ्र ही दूसरी प्रणालियाँ उनपर प्रभावी हो जाती हैं। वर्तमानमें चल रहे सांस्कृतिक उत्थान-पतन, राजनीतिप्रेरित युद्धों-महायुद्धोंने समस्त विश्वको हिलाकर रख दिया है। इससे हम भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहें हैं। ऐसे समयमें उत्कृष्ट जीवन-शिल्पी ऋषि-महर्षियोंद्वारा प्रतिपादित आध्यात्मिक दृष्टियाँ ही 'आत्म-दीप' बनकर जीवनको प्रकाशमय कर सकती हैं। जीवनकी समस्वरताके लिये इन प्रणालियोंका अवबोधन प्राप्त कर ही हम अपनी दीनता, मलिनताको धोकर प्रखर, तेजस्वी बनकर जीवनके उच्चतम मानदण्डोंकी उपलब्धि

करते हुए, अपने समाज एवं राष्ट्र ही नहीं, अपितु मानवताके लिये भी उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

यद्यपि संसारके बाह्य भौतिक स्वरूपमें, संचार-साधनों, वैज्ञानिक आविष्कारों आदिकी उन्नतिसे बहुत अधिक परिवर्तन हुआ है, किंतु इनसे आन्तरिक आध्यात्मिक पक्षमें कोई बड़ा परिवर्तन नहीं हुआ है। क्षुधा एवं अनुरागकी पुरातन शक्तियाँ और हृदयगत निर्दोष उल्लास इत्यादि मानव-प्रकृतिके सनातन गुण हैं। आज मानव-जातिके वास्तविक हितों, धर्मके प्रति गम्भीर आवेगों और दार्शनिक विचारों आदिमें वैसी प्रवृत्ति नहीं दीखती जैसी कि भौतिक पदार्थोंमें हो रही है।

आजके ब्रह्माण्डीय युगमें जब कि एकके बाद एक नये क्षितिज-पटल मानवके समक्ष खुलते जा रहे हैं, ऐसी चकाचौंधमें वह अध्यात्म-पथका आश्रय न लेनेके कारण असंतुलित एवं दिशाहीन-सा होता जा रहा है एवं एक संस्कृति दूसरी संस्कृतिको निगलनेके लिये खड़ी हो रही है। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रको निगलनेकी तैयारी कर रहा है। विश्वमें 'मात्स्य-न्याय' चल पड़ा है। ऐसेमें 'वसुधैव कुटुम्बकम्' सूत्र हमें सही दिशा दिखाता है, आशाकी भावनाओंका संचार करता है, विश्वके लिये शान्ति-मन्त्रका कार्य करता है एवं नयी ऊर्जा प्रदान करता है।

मानवीय जीवन और विश्व-जीवनमें निरन्तर पारस्परिक विनिमय होता रहता है। जो व्यक्ति केवल अपने लिये कार्य करता है, वह व्यर्थ ही जीवन बिताता है। संसारमें प्रगति मानवीय और दिव्यके बीच परस्पर सहयोगके कारण होती है। भारतीय शास्त्रोंके अनुसार सभी पुण्य एवं पवित्र कर्म यज्ञके नामसे कहे गये हैं और यज्ञ ही भगवान् विष्णु हैं, जो सम्पूर्ण विश्वमें परिव्याप्त हैं। इसलिये सम्पूर्ण जगत्में विष्णुके रूपमें ही सचराचर प्राणियोंको देखते हुए अन्तर्हृदयसे उनकी सेवा, शुश्रूषा और हितकी चिन्ता करते हुए सबकी कल्याण-कामना ही सर्वोत्तम यज्ञ है और वही सच्ची आराधना भी है।

गीतामें भी वसुधामात्रमें एक कुटुम्बकी दृष्टिको महान् अथवा सर्वोत्तम योग बताया गया है। वहाँ कहा गया है कि सम्पूर्ण जगत्के प्राणियोंमें या सम्पूर्ण जगत्‌रूप प्राणी-परिवारमें

अपनी ही आत्माको देखे और अपनी ही आत्मामें सम्पूर्ण विश्व अथवा प्राणियोंको अनुस्यूत देखे। अपनी ही आत्माके सुख-दुःखकी स्थितिको सम्पूर्ण प्राणियोंमें देखते हुए समान व्यवहार करनेवाला व्यक्ति ही सर्वोत्कृष्ट योगी है और यही सर्वोत्कृष्ट कार्य भी है। गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥
आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥

(गीता ६।२९,३२)

इसी प्रकार—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥

(६।३०)

—जो साधक मुझे सब जगह देखता है और सब वस्तुओंको मुझमें देखता है, उससे मैं कभी तिरोहित नहीं होता और न वह कभी मेरी आँखोंसे दूर होता है। जब सबमें भगवद्दर्शन ही विश्वधर्म है, फिर विभेद कैसा ? श्रीतुलसीदासजीने रामायणमें भी इन्हीं भावनाओंको सुलालित्यपूर्ण ढंगसे प्रस्तुत किया है—

आकर चारि लाख चौरासी। जाति जीव जल थल नभ बासी॥
सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी ॥

—हमारा यह आदर्श सदैवसे रहा है। सदियोंसे इस भावको रूप देनेके लिये हम यह सत्प्रयास कर रहे हैं।

भारतीय संस्कृतिमें पितरों एवं पूर्वजोंको तर्पण करते समय 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अत्यन्त उदार भावनासे ओत-प्रोत निम्न श्लोक अशेष विश्वके समस्त प्राणियोंकी तृप्ति-हेतु बोले जाते हैं। इसमें ऋषियोंका तीव्र, सूक्ष्म एवं लक्ष्यके प्रति गहन दृष्टिकोणका प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखायी पड़ता है। विष्णुपुराण (३।११।३२-३६) में कहा गया है—

देवासुरास्तथा यक्षा नागगन्धर्वराक्षसाः ।
पिशाचा गुह्यकाः सिद्धाः कूष्माण्डाः पशवः खगाः ॥
जलेचरा भूनिलया वाय्वाहाराश्च जन्तवः ।

तृप्तिमेतेन यान्वाशु महत्तेनाम्बुनाखिलाः ॥
नरकेषु समस्तेषु यातनासु च ये स्थिताः ।
तेषामाप्यायनायैतद्दीयते सलिलं मया ॥
ये बान्धवाबान्धवा वा येऽन्यजन्मनि बान्धवाः ।
ते तृप्तिमखिला यान्तु ये चास्मत्तोयकाङ्क्षिणः ॥
यत्र क्वचनसंस्थानां क्षुत्तृष्णोपहतात्मनाम् ।
इदमाप्यायनायास्तु मया दत्तं तिलोदकम् ॥

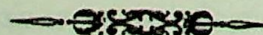
'देव, असुर, यक्ष, नाग, गन्धर्व, राक्षस, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध, कूष्माण्ड, पशु, पक्षी, जलचर, स्थलचर और वायु-भक्षक आदि सभी प्रकारके जीव मेरे दिये हुए इस जलसे तृप्त हों। जो प्राणी सम्पूर्ण नरकोंमें नाना प्रकारकी यातनाएँ भोग रहे हैं, उनकी तृप्तिके लिये मैं यह जलदान करता हूँ। जो मेरे बन्धु अथवा अबन्धु हैं तथा जो अन्य जन्मोंमें मेरे बन्धु थे एवं और भी जो-जो मुझसे जलकी इच्छा रखनेवाले हैं, वे सब मेरे दिये हुए जलसे परितृप्त हों। क्षुधा और तृष्णासे व्याकुल जीव कहीं भी क्यों न हों मेरा दिया हुआ यह तिलोदक उनको तृप्ति प्रदान करे।'

उपर्युक्त श्लोकोंमें जड़-चेतन एवं इतर प्राणियोंतकको कौटुम्बिक भावनाओंसे ओतप्रोत हो तर्पणके द्वारा आप्यायित करनेका प्रयत्न किया जाता है। इससे जगदात्मा भगवान् विष्णु एवं अपनी आत्माकी भी निर्व्याज-रूपसे परिपूर्ण तृप्ति हो जाती है।

आजके तेजीसे बढ़ते हुए विज्ञानके युगमें हमें 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावनाओंको अपनाना नितान्त आवश्यक हो गया है। युगधर्मकी माँग है कि इस भावनाका जितना ही व्यापक प्रसारण हो उतना ही त्राण है।

प्राचीन ऋषिलोग सनातन कालसे सम्पूर्ण विश्वके प्राणियोंके सुखकी कामना मुक्त हृदयसे करते आये हैं। उनका यह निरन्तरका उद्घोष ही था कि विश्वके समस्त प्राणी सदा सुखी और सर्वथा नीरोग रहें और सब लोग निरन्तर उत्तरोत्तर कल्याणकी परम्पराओंको देखते रहें तथा विश्वका कोई भी प्राणी किसी भी प्रकारके क्लेशका भाजन न बने—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत् ॥



साधकोंके प्रति—

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

श्रोता—करण-निरपेक्ष साधनकी दृष्टिसे जो कर्तव्य आप सिखाते हैं, उसका स्वरूप क्या है ?

स्वामीजी—आप करण-निरपेक्ष साधनपर जोर मत लगाओ, प्रत्युत इस बातपर जोर लगाओ कि भगवान्की प्राप्तिके लिये जड़ चीज (करण आदि) की सहायताकी आवश्यकता नहीं है। जैसे आपने सुना है कि करण एक है, ऐसे आप जानते हैं कि कारक कितने होते हैं ? कारक छः होते हैं—कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण। कारक शब्दका अर्थ क्या है ? जिससे क्रियाकी सिद्धि होती है, उसको कारक कहते हैं। कोई भी क्रिया कारकके बिना नहीं होती। अतः व्याकरणमें जहाँ इसका विवेचन हुआ है, वहाँ पहले ऐसा अर्थ किया है कि जो क्रियाका सम्बन्धी हो, उसको कारक कहते हैं। उसपर विचार करते-करते कहा कि षष्ठी कारक नहीं है; क्योंकि उसका क्रियाके साथ सम्बन्ध नहीं है। परंतु 'राज्ञः पुरुषो गच्छति' राजाका पुरुष जाता है—इसमें राजाका सम्बन्ध पुरुषके साथ और पुरुषका सम्बन्ध गमनरूपी क्रियाके साथ होनेसे राजाका सम्बन्ध परम्परासे क्रियाके साथ हो गया; अतः राजा कारक होना चाहिये ? ऐसी शङ्का होनेपर यह निर्णय किया गया कि जो क्रियाको पैदा करनेवाला हो, उसका नाम कारक है—'क्रियाजनकत्वं कारकत्वम्।'।

प्रत्येक क्रियाका आरम्भ और अन्त होता है—यह सबका अनुभव है। जैसे मैंने व्याख्यान आरम्भ किया तो उसकी समाप्ति भी होगी। आप कोई भी काम करो, उसका आरम्भ और अन्त जरूर होता है। जिसका आरम्भ और अन्त होता है, वह अनन्तका प्रापक नहीं होता। जो खुद ही उत्पन्न और नष्ट होता है, वह अनन्तकी प्राप्ति करानेवाला कैसे होगा ? वस्तुमात्र, व्यक्तिमात्र, परिस्थितिमात्र, क्रियामात्र उत्पन्न और नष्ट होनेवाली है। उत्पन्न और नष्ट होनेवाली ही क्रिया होती है तथा उत्पन्न और नष्ट होनेवाले ही पदार्थ होते हैं। ऐसे उत्पन्न और नष्ट होनेवाले जड़के द्वारा अनुत्पन्न चिन्मय तत्त्वकी प्राप्ति नहीं होती, प्रत्युत जड़के त्यागसे चिन्मय तत्त्वकी प्राप्ति होती है। अतः करण-निरपेक्षका अर्थ केवल करणसे रहित ही नहीं है, प्रत्युत कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और

अधिकरण—छहों कारकोंसे रहित है। कारकमात्र क्रियाजनक होते हैं, और क्रिया उत्पन्न एवं नष्ट होनेवाली होती है। उत्पन्न और नष्ट होनेवाली क्रियासे अनुत्पन्न तत्त्वकी प्राप्ति कैसे होगी ? अतः परमात्मतत्त्व कर्ता-निरपेक्ष है, कर्म-निरपेक्ष है, करण-निरपेक्ष है, सम्प्रदान-निरपेक्ष है, अपादान-निरपेक्ष है और अधिकरण-निरपेक्ष है। तात्पर्य है कि कोई भी कारक परमात्माको पकड़ नहीं सकता; क्योंकि सभी कारक उत्पन्न और नष्ट होनेवाले हैं। उत्पन्न और नष्ट होनेवालेके त्यागसे अनुत्पन्न तत्त्वकी प्राप्ति नहीं होगी तो किसकी प्राप्ति होगी ? जहाँ उत्पन्न और नष्ट होनेवालेसे उपराम हुए, अनुत्पन्न तत्त्व प्राप्त हो जायगा।

वास्तवमें अनुत्पन्न तत्त्व अप्राप्त नहीं है। उत्पन्न होनेवाले पदार्थोंका, वस्तुओंका सहारा ही उसमें बाधक है। उत्पन्न और नष्ट होनेवाली क्रिया, वस्तु, परिस्थिति, अवस्था, घटना आदिका जो महत्त्व अन्तःकरणमें पड़ा हुआ है, यही उस तत्त्वकी प्राप्तिमें बाधक है। अतः करण-निरपेक्ष कहनेका तात्पर्य करणके साथ विरोध नहीं है, प्रत्युत उत्पन्न और नष्ट होनेवाली वस्तुके द्वारा अनुत्पन्न तत्त्वकी प्राप्ति नहीं होती—इसमें तात्पर्य है।

श्रोता—नाशवान्का महत्त्व कैसे छूटे ?

स्वामीजी—दूसरोंका हित करनेसे। अपनी शक्तिके अनुसार दूसरोंका हित करो। अन्नक्षेत्र खोलो, प्याऊ लगाओ, अस्पताल खोलो। इस तरहसे लोगोंके हितकी भावना होनेसे महत्त्व छूटेगा। वस्तु हमारेको मिल जाय—यह जड़को खींचनेका उपाय है, और जबतक जड़को खींचते रहोगे, तबतक चिन्मय तत्त्वकी प्राप्ति नहीं होगी। इन वस्तुओंके द्वारा दूसरोंका हित हो—यह जब होगा, तब मात्र क्रिया और पदार्थका प्रवाह लोगोंके हितकी तरफ हो जायगा और चिन्मय तत्त्व शेष रह जायगा, उसकी प्राप्ति हो जायगी। जड़ तो स्वतः नष्ट होता है। जड़का खिंचाव तो रह जाता है, पर जड़ नहीं रहता। बाल्यावस्था रह गयी क्या ? नहीं रही तो युवावस्था रहेगी क्या ? धनवत्ता रहेगी क्या ? यह बनी रहे और मेरी तरफ आ जाय—ऐसी मान्यता ही बाधा है। अब इसकी

जगह यह भाव हो जाय कि दूसरोंका हित हो, दूसरोंका भला हो तो जड़ताका त्याग हो जायगा और त्याग होते ही तत्काल परमशान्तिकी प्राप्ति हो जायगी—‘त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्’ (गीता १२।१२)। अतः करण-निरपेक्षका तात्पर्य त्यागमें है। जड़की सहायता जड़की प्राप्तिमें तो उपयोगी हो सकती है, पर चिन्मय तत्त्वकी प्राप्तिमें जड़की सहायता काम नहीं करती।

एक बात और बतायें। कोई आदमी सदावर्त खोलता है तो क्या उसका लक्ष्य यह होता है कि मैं दुनियामात्रकी भूख मिटा दूँगा ? क्या ‘सर्वभूतहिते रताः’ का अर्थ यह होता है कि मैं सबका हित कर ही दूँगा ? यह नहीं है। अपनी शक्ति दूसरोंकी सेवामें लगानेमें ही तात्पर्य है। सबकी भूख दूर करनेका, सबका दुःख दूर करनेका उसका ठेका नहीं है। जितना अन्न मैं खाता हूँ, उसके सिवाय अपने पास जो अन्न है, वह दूसरोंके काम आ जाय।

‘सर्वभूतहिते रताः’ का तात्पर्य है—अपने स्वार्थका त्याग करना। कारण कि स्वार्थका जो लोभ है, यही तो बाधक है। ऐसे ही वस्तुओंका, पदार्थोंका, व्यक्तियोंका, अवस्थाओंका मनमें जो महत्त्व अङ्कित है, यही परमात्मतत्त्वकी प्राप्तिमें बाधक है। जब दुनियामात्र मिलकर एक आदमीकी भी पूर्ति नहीं कर सकती, उसको सुखी नहीं कर सकती, तो फिर एक आदमी सम्पूर्ण दुनियाकी पूर्ति कैसे कर देगा ? अपनी पूरी शक्ति लगा देनेकी ही जिम्मेवारी है, दूसरोंका दुःख दूर कर देनेकी जिम्मेवारी नहीं है।

श्रोता—हमारा तो सारा समय जड़ताकी प्राप्तिमें ही लग रहा है !

स्वामीजी—तो फिर परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति नहीं होगी अन्नदाता ! और चाहे सो हो जाय ! गीताने साफ कहा है कि जड़ चीजोंसे सुख भोगना और उनका संग्रह करना—इन दोमें जिसकी आसक्ति होती है, उसमें परमात्माको प्राप्त करनेका निश्चय भी नहीं हो सकता, प्राप्त करना तो दूर रहा ! (गीता २।४४)। संसारमें मेरा नाम हो जाय, मेरेको आराम मिले, मैं धनी बन जाऊँ—यह जड़ चीजोंकी जबतक मनमें लालसा है, तबतक चिन्मय तत्त्वकी प्राप्ति नहीं होगी। यह तात्पर्य है करण-निरपेक्षका ! आप ध्यान दें। करण-निरपेक्षका अर्थ है कि परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति जड़की अपेक्षा नहीं रखती, प्रत्युत

जड़के त्यागकी अपेक्षा रखती है। क्रिया और पदार्थ, व्यक्ति और वस्तु, अवस्था और परिस्थिति—इनके द्वारा परमात्माकी प्राप्ति नहीं होती। इनकी उपेक्षा हो जाय, त्याग हो जाय, भीतरसे इनका महत्त्व हट जाय तो तत्काल प्राप्ति हो जायगी; क्योंकि परमात्मा अप्राप्त नहीं है। संसार अप्राप्त है, पर उसको प्राप्त मानते हैं, प्राप्त करना चाहते हैं, यही बाधा है। यह बाधा सुगमतासे दूर होती है—‘सर्वभूतहिते रताः’ होनेसे। प्राणिमात्रके हितमें हमारी प्रीति हो जाय। प्रीति होनेसे क्या होगा ? स्वार्थकी जो भावना है, व्यक्तिगत सुखभोगकी जो इच्छा है, वह हटेगी, और वह जितनी हटेगी, उतने ही आप चिन्मय तत्त्वके नजदीक पहुँच जाओगे। उस तत्त्वसे विमुखता हुई है, अलगाव नहीं हुआ है।

दूसरोंको सुख पहुँचानेसे अपने सुखभोगकी इच्छा मिटती है। माता बालकका पालन करती है तो वह बालकको भूखा नहीं रहने देती, खुद भूखी रह जाती है। ऐसे ही केवल दुनियामात्रका हित करनेकी जोरदार इच्छा होगी तो अपनी स्वार्थबुद्धिका त्याग सुगमतासे हो जायगा।

श्रोता—दो बात मालूम पड़ती है कि जड़ताका त्याग करना और अन्तःकरणको साधनरूपमें प्रयुक्त नहीं करना।

स्वामीजी—साधनमें प्रयुक्त न करनेका तात्पर्य है कि यह हमारा नहीं है और हमारे लिये नहीं है, औरोंका है और औरोंके लिये है। न अन्तःकरण हमारे लिये है, न बहिःकरण हमारे लिये है। न इन्द्रियाँ हमारे लिये हैं, न शरीर हमारे लिये है, न सम्पत्ति हमारे लिये है। हमारी कहलानेवाली जितनी चीजें हैं, वे हमारी नहीं हैं और हमारे लिये नहीं हैं—ये दो बातें दृढ़ करनी हैं। स्वार्थबुद्धि, संग्रहबुद्धि, सुखबुद्धि, भोगबुद्धि नहीं होनी चाहिये, फिर सब ठीक हो जायगा। यही करण-निरपेक्षका तात्पर्य है।

करण किसका नाम है ? जिस साधनके अनन्तर तत्काल क्रियाकी सिद्धि हो जाय, उसका नाम करण है। जैसे, ‘रामेण बाणेन हतो वाली’—‘रामके बाणसे बालि मरा’ तो बालिके मरनेमें बाण हेतु हुआ; अतः बाण करण हुआ। यद्यपि बाणके चलनेमें धनुष, डोरी, हाथ आदि सब हेतु हैं, तथापि बालि बाणसे मरा है, धनुष, डोरी आदिसे नहीं। अतः जिससे बालि मर गया, उस बाणको करण कहेंगे। करणसे क्रियाकी सिद्धि

होती है, उससे परमात्माकी प्राप्ति कैसे हो जायगी ?

श्रोता—महाराजजी ! क्रियाकी सिद्धिमें तो कर्ता भी रहता है ?

स्वामीजी—हाँ, कर्ता भी रहता है, कर्म भी रहता है, करण भी रहता है, सम्प्रदान भी रहता है, अपादान भी रहता है और अधिकरण भी रहता है ।

श्रोता—फिर यह केवल करण-निरपेक्ष कैसे हुआ ?

स्वामीजी—करण-निरपेक्ष इसलिये कहा है कि क्रियाकी सिद्धि करणके व्यापारके बाद ही होती है । करणका लक्षण बताया है—‘साधकतमं करणम्’ (पाणि० अ० १।४।४२) । साधक नहीं, साधकतर नहीं, साधकतम बताया है । क्रियाकी सिद्धिमें जो अत्यन्त उपकारक होता है, उसका नाम ‘करण’ होता है । अतः अत्यन्त उपकारक जो कारक है, वह करण भी जिसकी प्राप्तिमें हेतु नहीं है, फिर दूसरे कारक हेतु कैसे हो जायँगे ? यह तात्पर्य है करण-निरपेक्ष कहनेका ।

श्रोता—इसे यदि कारक-निरपेक्ष कहें तो क्या हर्ज है ?

स्वामीजी—बिलकुल कारक-निरपेक्ष कह सकते हैं । परंतु क्रियाकी निष्पत्ति करणके बाद होती है—‘क्रियाया निष्पत्तिर्यद्व्यापारादनन्तरं करणत्वं भवेत् तेन ।’ क्रियाके होनेमें सब कारक कारण हैं—‘क्रियाजनकत्वं कारकत्वम्’, पर करणके व्यापारमें क्रियाकी सिद्धि हो ही जाती है । अतः करण-निरपेक्ष कहनेसे कारक-निरपेक्ष हो गया ।

श्रोता—इसका मतलब यह हुआ कि करणके द्वारा हम जो क्रिया करें, वह ‘सर्वभूतहिते रताः’ होनी चाहिये ?

स्वामीजी—ध्यान दें, परमात्माकी प्राप्तिमें प्राणिमात्रका हित कारण नहीं है, प्रत्युत प्राणिमात्रके हितका भाव कारण है ।

अतः अपना भाव, उद्देश्य, लक्ष्य बदल दिया जाय तो सब ठीक हो जायगा । जैसा भाव, उद्देश्य, लक्ष्य होगा, उसके अनुसार ही व्यवहार होगा । अतः लक्ष्य केवल दूसरोंके हितका हो, अपने स्वार्थ और सुखका न हो ।

श्रोता—रामने बालिको मारनेका पहले निश्चय किया, फिर बाण काममें लिया । यदि बाण काममें नहीं लेते तो केवल निश्चयसे बालि मर जाता क्या ?

स्वामीजी—क्रियाकी सिद्धिमें ही करणकी अपेक्षा है । परमात्मा क्रियाका विषय है ही नहीं । करण विशेष होनेसे क्रिया विशेष होगी, कर्ता कैसे विशेष हो जायगा ? कलम अच्छी होनेसे लिखना अच्छा होगा, लेखक कैसे अच्छा हो जायगा ? कल्याण करणका करना है कि कर्ताका करना है ? मुक्ति करणकी होगी कि कर्ताकी होगी ? करणके द्वारा कर्ताकी मुक्ति कैसे हो जायगी ? करणके द्वारा तो क्रिया होगी ।

क्रियाकी सिद्धिमें करण प्रधान है । अतः करण-निरपेक्ष कहनेसे स्वतः ही कारक-निरपेक्ष हो गया । कारकसे क्रियाकी सिद्धि हो जायगी, दुनियाका काम हो जायगा, पर परमात्मा कैसे प्राप्त होगा ?

श्रोता—आप कहते हैं कि परमार्थका कार्य करना चाहिये, अन्नक्षेत्र खोलना चाहिये, प्याऊ लगाना चाहिये, तो उनका फल भोगनेके लिये पुनः जन्म लेना पड़ेगा और इस तरह जन्म-मरणसे कभी छुटकारा नहीं होगा ।

स्वामीजी—पारमार्थिक कार्यसे कल्याण नहीं होता । कल्याण निष्कामभावसे होता है । बन्धन कामनासे ही होता है । कामना नहीं होगी तो कल्याण ही होगा, और क्या होगा ? जन्म-मरणका कारण तो कामना ही है । अतः कामनाका त्याग करना है ।

दाराः पुत्रा धनं वा परिजनसहितो बन्धुवर्गः प्रियो वा

माता भ्राता पिता वा श्वशुरकुलजना भृत्य ऐश्वर्यवित्ते ।

विद्या रूपं विमलभवनं यौवनं यौवतं वा

सर्वं व्यर्थं मरणसमये धर्म एकः सहायः ॥

‘स्त्री, पुत्र, धन, परिजन, बन्धुवर्ग, प्रिय सुहृद्, माता, पिता, भ्राता, श्वशुर-कुलके लोग, भृत्यवर्ग, ऐश्वर्य, धन, विद्या, रूप, उज्ज्वल भवन, यौवन और युवतियोंका समुदाय—ये सभी मृत्युकालमें व्यर्थ सिद्ध होते हैं, उस समय एकमात्र धर्म ही सहायक होता है ।’

प्रदक्षिणा (परिक्रमा) तथा स्वस्तिकका रहस्य

प्रदक्षिणा—

शास्त्रके कथनानुसार पूज्य, वन्दनीय और आदरणीय व्यक्ति तथा विभिन्न शक्तियाँ (भगवान्, देवता आदि) प्रदक्षिणाके योग्य हैं। केवल श्रेष्ठ पवित्र सत्त्वगुण-प्रधान तत्त्व ही पूजनीय होनेके कारण उनकी सेवासे उपासक स्वयं पवित्र एवं सात्त्विक बनता है। जिस प्रकार भगवान्‌के चरणोंका स्पर्श प्राप्त करके जल-तीर्थ 'चरणामृत' बन जाता है, वैसे ही भगवान्‌को निवेदित किया गया नैवेद्य 'प्रसाद' बन जाता है और उस चरणामृत तथा प्रसादके ग्रहण करनेसे उपासक पवित्र हो जाता है। उसी प्रकार साधकमें, सत्त्वगुणी प्राणी, पदार्थ तथा देवताकी दाहिनी दिशासे की गयी परिक्रमासे सत्त्वगुणकी वृद्धि होती है। जलमें स्नान करनेपर स्वाभाविकरूपसे गीला होनेके समान ही पूजनीय वस्तुकी प्रदक्षिणा करनेसे हम पुण्यकणों तथा पवित्र गुणोंसे युक्त हो जाते हैं। यह तथ्य स्वयंसिद्ध होनेसे शास्त्रसम्मत है। जैसे साधारण स्वच्छ जल तथा भगवान्‌से स्पर्श किये गये जल अर्थात् चरणामृतके अन्तरको चर्मचक्षुओंसे नहीं पहचाना जा सकता, वैसे ही साधारण अन्न-पदार्थ और भगवान्‌को अर्पित किये हुए अन्न-पदार्थ अर्थात् प्रसादके भेदको बहिर्मुखी दृष्टिसे देखा नहीं जा सकता। इस अन्तरको दिव्यदृष्टिसे एवं सूक्ष्मबुद्धिसे निश्चित ही देखा जा सकता है; वैसे ही परिक्रमा न किये हुए और परिक्रमा किये हुए भगवान्‌के सम्मुख उपस्थित व्यक्तिके आभामण्डलके अन्तरको सूक्ष्मग्राही अन्तश्चक्षुओंसे एवं ज्ञानदृष्टिसे ही देख सकना सम्भव है। इसी प्रकारके सूक्ष्मतर तथा सूक्ष्मतर ज्ञान-ग्रहणसे ही धर्मशास्त्रोंके सिद्धान्तोंका आविर्भाव हुआ है। उनके अनुशीलन-परिशीलन तथा निरीक्षण-परीक्षणका कार्य उसी प्रकारकी अत्यन्त सूक्ष्म तथा दिव्य प्रज्ञा या दैवी मेधा ही कर सकती है और यह कार्य प्रगतिशील तथा उन्नत ज्ञान शक्तिसे सम्पन्न होना उचित भी है।

दैवी शक्ति और उसका तेजोवलय (ज्योतिर्मण्डल) स्वभावतः ही दक्षिणवर्ती होते हैं अर्थात् भाव यह है कि उस मण्डलकी दिव्य प्रभा सदैव ही दक्षिण दिशाकी ओरसे गतिमान होती है। दिव्यत्व या देवत्व ही श्रेष्ठत्व होनेसे दायों

हाथ या दक्षिणावर्तन श्रेष्ठ है। इसी कारण दिव्य लहरियोंका दक्षिणकी ओर गतिमान होना स्वाभाविक है। जिस स्थानपर देवताकी प्रतिष्ठा भलीभाँति करके प्रतिमा अवस्थित है, उस स्थानके मध्यबिन्दुसे अर्थात् देवप्रतिमासे कुछ दूरीतक उस देवताकी दिव्य प्रभा बिखरी रहती है, जो निकटमें कुछ गहरी और आगे क्रमशः कम तथा विरल होती जाती है। सूर्य तथा चन्द्रमाकी ओर ध्यानसे देखनेपर इस तथ्यको हम देख सकते हैं। उस देवताके चारों ओर घूमने या उस तेजोमण्डलमेंसे निकलनेपर वे दिव्य कण हमारे चारों ओर चिपक जाते हैं। तेजकी इन लहरियोंकी गतिकी दिशामें हमारे गतिमान होने अथवा चलनेसे उस देवताके ज्योतिर्मण्डलके अन्तर्गत विद्यमान दिव्य कणों, सत्त्वगुणके परमाणुओं तथा पवित्र गुणोंकी प्राप्ति सहज ही हो सकती है। इसीलिये देवताका तेज दक्षिणवर्ती होनेसे उसकी प्रदक्षिणा भी उसीके अनुरूप गतिकी दिशामें करना शास्त्रसम्मत है। दक्षिणवर्ती या दाहिने हाथकी ओर घूमना यही 'प्रदक्षिणा' शब्दका अर्थ है। इसलिये जितनी अधिक प्रदक्षिणा की जाय, उतनी ही अधिक दिव्यताके पुट हमारे व्यक्तित्वको प्राप्त होंगे और व्यक्तित्वका वलय उससे पुनीत होकर स्वच्छ होगा।

दैवी आभामण्डलकी गति दक्षिणवर्ती होती है। उसके विरुद्ध अपनी गति होनेपर अर्थात् वामवर्ती प्रदक्षिणा करनेसे हमारे अंदर जो दिव्य परमाणु पहलेसे हैं, उनमें तथा ज्योतिर्मण्डलकी गतिमें संघर्ष निर्माण होगा, उसमें उनका अपव्यय होकर वे नष्ट हो जायँगे। दिव्य या पुण्य कणोंका नाश होना एक प्रकारसे पाप ही है। इसके विपरीत दिव्य परमाणुओंका सञ्चय पुण्य है। इसीलिये वामवर्तिनी परिक्रमा पापरूप है तथा वर्जित है। दक्षिणावर्तिनी प्रदक्षिणा पुण्यरूप होनेसे ग्राह्य एवं विहित समझी जाती है। कार्य-कारणका इस प्रकार विवेचन करनेसे यह पता चलता है कि यह परम्परागत अन्धविश्वास न होकर विज्ञानसम्मत तथ्य है।

परिक्रमायोग्य दिव्य वस्तु यथा—भगवान्, देवता आदि अपनी परिक्रमा करनेवालेको अपने तेजःकण उनकी दक्षिणावर्तिनी गति होनेके कारण स्वभावतः ही देते हैं। उनका

यह तेजोदान वर-प्रदान है, जो सम्भावित विघ्नों एवं संकटोंका नाश करनेमें समर्थ है। परंतु ऐसी इन महान् विभूतियोंकी परिक्रमा यदि उपासकोंने न की तो उनके ये तेजःकण अथवा दिव्य परमाणु व्यर्थ चले जाते हैं। परिणामस्वरूप सम्भावित संकटोंके निराकरणका वर या सामर्थ्य प्राप्त करनेसे हम वञ्चित रह जाते हैं। परिक्रमाके योग्य विभूतियोंकी परिक्रमा न करनेसे हम अपने ही हितका तथा कल्याणका नाश कर देते हैं। इस प्रकार पापके भागी बनते हैं। इसका एक उत्तम दृष्टान्त इक्ष्वाकुकुलमें उत्पन्न होनेवाले महाराज दिलीपका है। स्वर्गसे पृथ्वीपर लौटते समय उन्हें मार्गमें देवताओंकी दिव्य गौ कामधेनु दिखायी दी, पर राजा दिलीपने उस ओर दुर्लक्ष्य किया और उसकी परिक्रमा नहीं की। इसपर गो माता क्रुद्ध हो गयीं। उसका परिणाम यह हुआ कि परिक्रमा करनेसे उन्हें जिन पुण्यकर्मोंका लाभ हुआ होता और उसके कारण उनके पूर्वजन्मोंके पापके फलस्वरूप संतान न होनेमें जो बाधा थी, उसका नाश हो गया होता, जिससे आगे चलकर संतानकी प्राप्ति हो सकती थी, परंतु दिलीपके ऐसा न करनेके कारण वह बाधा ज्यों-की-त्यों बनी रही। उन्हें 'निःसंतान रहनेका दुःख भोगना पड़ा। परंतु कुछ कालके बाद ऋषि वसिष्ठको अपनी दिव्यदृष्टिसे राजाके इस पूर्वके प्रमादका पता चला, उसके परिमार्जनके लिये प्रायश्चित्तके रूपमें राजाको कामधेनुकी पुत्री नन्दिनी गौकी दीर्घकालतक सतत और निरलस होकर सब प्रकारकी सेवा करनी पड़ी। इस सेवासे— परिक्रमा न करनेके पापसे राजाके शुद्ध होनेपर, नन्दिनी एवं स्वयं कामधेनुने राजापर प्रसन्न होकर उन्हें वरदान दिया, जिससे उन्हें पुत्रकी प्राप्ति हुई। यह कथा जानकार लोगोंको भलीभाँति ज्ञात है। तात्पर्य यह है कि विभूतिकी परिक्रमा न करना प्रमादमात्र है। उस विभूतिके पवित्र गुणोंसे अलिप्त तथा वञ्चित रहनेकी स्थिति शाप तथा पापरूप होनेपर भी पश्चात्ताप तथा प्रायश्चित्तके द्वारा इस पापकी निवृत्ति की जा सकती है अर्थात् यह निवृत्ति शाप-निवारक बन जाती है। सारांश यह कि तटस्थता तथा उपेक्षा, जहाँ प्रमाद समझा जाता है, वहाँ परिक्रमामें उलटी गति स्वीकार करना तो और भी महान् पाप है।

केवल महादेवजीके बारेमें तेजोलहरीकी गति केवल दाहिनी ओर नहीं है, अतः अरघे (जलहरी) के निचले भागके

कोनेतक जाकर यह पुनः वापस लौटती है, इसी कारण उनकी परिक्रमा विशिष्ट प्रकारसे दोनों ओर करनेका विधान है। इसी शास्त्रीय आधारके कारण ही ऐसी विशिष्ट परिक्रमाको स्वभावतः 'प्रदक्षिणा' कहा गया है। जिस प्रकार लौह-चुंबककी शक्तिकी गतिकी दिशा चुंबकपर कागज रखकर उसके ऊपर चिपके हुए लौहकणोंकी गतिसे दिखायी देती है, उसी प्रकार दिव्य लहरियोंका दक्षिणावर्तन भी प्रगत, सूक्ष्म तथा दिव्य प्रज्ञा या बुद्धिके ध्यानमें आ सकता है। इसी प्रकार अदृश्य—परंतु सत्यके भानके रहस्यज्ञानको समझा जा सकता है।

स्वस्तिक—

देवताके चारों ओर घूमनेवाले आभामण्डलका चिह्न ही 'स्वस्तिक' होनेके कारण तथा वह देवताका प्रतीक होनेके कारण शास्त्रमें उसे शुभ माना गया है। तर्कसे भी इसे सिद्ध किया जा सकता है और यह मान्यता श्रुतिद्वारा प्रतिपादित तथा युक्तिसंगत भी दिखायी देती है। यदि जानकार लोगोंको इस प्रकारकी अनुभूति भी होती है, तो इसमें आश्चर्य कुछ नहीं। श्रुति, अनुभूति तथा युक्ति—इन तीनोंका यह एक-सा प्रतिपादन प्रयागराजमें होनेवाले संगमके समान है। इसे यों देखिये— दिशाएँ मुख्यतः चार हैं। खड़ी तथा सीधी रेखा खींचकर जो धनचिह्न (+) जैसा आकार बनता है, वह आकार चारों दिशाओंका द्योतक है। तेजोलहरी चारों दिशाओंमें अर्थात् सभी दिशाओंमें दाहिनी ओरसे गतिमान है, यह प्रदर्शित करनेके लिये उसका रेखाचित्र किस प्रकार बनाया जा सकता है, इसका सीधा सरल उत्तर है कि धनचिह्नके आकारकी चारों भुजाओंके कोनेसे ९० अंशका कोण बनानेवाली एक रेखा दाहिनी ओर खींचनेसे यह पूरा कार्य हो जाता है। इसका प्रारम्भ ऊपरवाली भुजासे करना स्वाभाविक ही है। प्रथमतः आकारकी जो ऊपरकी भुजा है, वहाँ दाहिनी दिशामें एक रेखा खींची जाय। इसके बाद उस पूरे आकारको उस रेखाकी दिशामें अर्थात् दाहिनी ओर घुमानेसे पूर्वी दिशाके बायीं ओरकी भुजा चक्रगतिसे ऊपरकी ओर आ जायगी। अब दाहिनी ओर रेखा खींचनेसे और इस प्रकार सब मिलाकर चार बार करनेसे जो चिह्न बनता है, वह दाहिनी ओरकी गति अर्थात् दक्षिणावर्ती गतिका प्रतीक है। तेजोवल्यके दाहिनी ओरसे गतिमान होनेके कारण पर्यायसे तथा इस रेखाचित्रको

देवताके तेजका ही प्रतीक मानना होगा।

देवताका तेज कल्याणकारक होता है। यह उपासकोंके लिये श्रेष्ठ है। इसलिये हम तेजकी गतिके अनुरूप गतिको स्वीकार करते हैं अर्थात् परिक्रमा करते हैं। उसी प्रकार कल्याणकारी गतिके चिह्नको 'स्वस्तिक' कहा जाना उचित ही है। 'स्वस्ति' का अर्थ है—क्षेम, मङ्गल इत्यादि प्रकारकी

शुभता एवं 'क' अर्थात् कारक या करनेवाला। इसलिये देवताका तेज शुभ करनेवाला— स्वस्ति करनेवाला है और उसका गति-सिद्ध-चिह्न 'स्वस्तिक' कहा गया है।

स्वस्तिकके चिह्नका रहस्य भी परिक्रमाके रहस्यके समान है। उपासनाका रहस्य जाननेके लिये इच्छुक जिज्ञासुओंके लिये यह उपयोगी सिद्ध होगा, ऐसी आशा है।

भागवतीय प्रवचन—३६

जितेन्द्रिय बनो

(संत श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज)

स्वाम्यभुव मनुकी रानीका नाम शतरूपा था। मनु महाराजके दो पुत्र थे—प्रियव्रत और उत्तानपाद। तीन कन्याएँ भी थीं—आकूति, देवहूति तथा प्रसूति। आकूतिका रुचिसे, देवहूतिका कर्दमसे और प्रसूतिका दक्षसे विवाह हुआ।

कर्दम ऋषि और देवहूतिके घर कपिल भगवान् आये थे।

विदुरजी प्रश्न करते हैं कि 'हे मैत्रेयजी ! आप कर्दम और देवहूतिके वंशकी कथा कहिये। कपिल भगवान्की इस कथाको सुननेकी मेरी इच्छा है।'

मैत्रेयजी कहते हैं—कपिल ब्रह्मज्ञानके स्वरूप हैं। कर्दम बनोगे तो तुम्हारे घर कपिल आयेंगे। कर्दम अर्थात् इन्द्रियोंका दमन करनेवाला। कर्दम अर्थात् जितेन्द्रिय। जबतक मनुष्य कर्दम नहीं बन पाता, तबतक उसे कपिल नहीं मिलता। शरीरमें सत्त्वगुणकी वृद्धि होनेपर अपने-आप ज्ञानका झरना फूट पड़ता है, ज्ञान प्रकट होता है।

शरीरमें सत्त्वगुणकी वृद्धिसे ज्ञानकी प्राप्ति होती है। शुद्ध आहार, शुद्ध आचार और शुद्ध विहारसे सत्त्वगुणकी वृद्धि होती है। सत्त्वगुण बढ़ेगा तो ज्ञान मिलेगा। सत्त्वगुण बढ़ता है संयमसे, सदाचारसे। सत्त्वगुणके बढ़नेसे अंदरसे ज्ञानका स्फुरण होता है। जीभके सुधरनेसे जीवन सुधरता है। जीभ जो कुछ माँगी, वह सभी उसे मत दो। सोनेपर दो-चार मिनटमें ही नींद आ जायगी ऐसा महसूस हो, तभी सोना चाहिये। सोनेपर तुरंत नींद न आयेगी तो जीव कामसुखका चिन्तन करेगा।

जीवन सात्त्विक बनाओ।

जितेन्द्रिय बननेके लिये सरस्वतीके किनारे रहना होगा। सरस्वतीका किनारा सत्कर्मका किनारा है। यमुनाजी भक्तिका

स्वरूप हैं, गङ्गा ज्ञानका और सरस्वती सत्कर्मका स्वरूप हैं।

शुकदेवजी राजर्षिको सुनाते हैं—राजन् ! कर्दम ऋषि सर्वदा तप करते थे। उनके तपसे भगवान् प्रसन्न हुए। भगवान् ऋषिके घर पधारे। विदुरजीके घर भी द्वारकानाथ गये थे।

भगवान् श्रीकृष्ण हर तरहसे उदार हैं। किंतु समय देनेमें उदार नहीं हैं। सुवर्णकी अपेक्षा समयको अधिक मूल्यवान् मानो। लक्ष्यको लक्ष्यमें रखोगे तो जीवन सफल होगा। बिना लक्ष्यका मनुष्य बिना पतवारकी नाव-जैसा है।

कर्दम जितेन्द्रिय महात्मा थे। उनकी तपश्चर्या सफल हो गयी। उनके सामने भगवान् प्रकट हुए। सिद्धपुरके पास कर्दम ऋषिका आश्रम था। उन्होंने बड़ी तपश्चर्या की। शरीरमें केवल हड्डियाँ ही रह गयीं। ऐसी कठोर तपश्चर्यासे भगवान् प्रसन्न हुए। आँखोंसे हर्षाश्रु निकल आये। उन्हीं आँसुओंसे बिन्दु-सरोवर बना। सिद्धपुरकी यात्रा करते समय बिन्दु-सरोवरमें स्नान करना पड़ता है।

अधिक ध्यान करोगे तो भगवान् तुमपर भी प्रसन्न होंगे और तुम्हें दर्शन भी देंगे। सावधान रहो कि तुम्हारा मन कहीं सांसारिक विषयोंमें स्थिर न हो जाय।

संसारका सौन्दर्य क्षणिक है। धन-सम्पत्तिके बढ़नेपर लोगोंमें विवेकका अभाव होने लगता है। जगत्की कोई भी वस्तु सुन्दर नहीं है। आँखोंमें विकार होनेके कारण वस्तु सुन्दर लगती है। शरीरकी नहीं, हृदयकी सुन्दरता देखो। जगत्की अपेक्षा जगत्का सर्जनहार अधिक सुन्दर है। श्रीकृष्ण सुन्दर हैं, ऐसा बार-बार विचार करनेसे भक्तिका उदय होता है। एक ईश्वर ही नित्य-सुन्दर है।

ठाकुरजीके दर्शन करनेसे आँखें सफल होती हैं। कर्दम

कहते हैं—महाराज ! आपके दर्शन करनेसे मेरी आँखें सफल हुई हैं। आपको प्राप्त करनेके बाद संसारकी माँग करनेवाला मूर्ख है। संसारके जिस सुखका भोग नरकके कीड़े भी करते हैं, वैसे सुखकी इच्छा परमात्मासे करनेवाला कौन मूर्ख होगा।

लौकिक कामसुखकी इच्छापूर्तिके लिये श्रीकृष्णकी आराधना करनेवाला तुच्छ है।

कर्मने भगवान्से कहा कि 'मैं आपसे स्त्रीसंग नहीं, सत्संगकी इच्छा करता हूँ। मुझे ऐसी स्त्री दीजिये कि जो मुझे आपकी ओर ले जाय। ऐसी पत्नी मुझे मिले कि जब कभी मेरे मनमें पाप आ जाय तो वह मुझे उस पापकर्मसे रोके और आपके मार्गमें ले चले।'

भगवान्ने कहा—दो दिनके बाद मनुमहाराज तुम्हारे आश्रमपर आयेंगे और अपनी पुत्री देवहूतिको तुम्हें अर्पण करेंगे।

पति-पत्नी पवित्र-जीवन जीयें तो भगवान्की इच्छा उनके यहाँ जन्म लेनेकी होती है।

भगवान्ने कहा कि 'मैं पुत्ररूपमें तुम्हारे यहाँ आऊँगा। जगतको मुझे सांख्यशास्त्रका उपदेश करना है।' ऐसा कहकर श्रीहरि वहाँसे बिदा हो गये।

मनुमहाराज शतरूपा और देवहूतिके साथ कर्म ऋषिके आश्रममें आये। और उन्होंने कहा कि 'मैं यह कन्या आपको अर्पण करना चाहता हूँ।'

कर्म ऋषि कहते हैं—मेरा विवाह कामके विनाशके लिये है। काम कृष्णमिलनमें विघ्नकर्ता है। उसी कामको मुझे मारना है। एक पुत्रके होनेतक लौकिक सम्बन्ध बनाये रखूँगा। एक पुत्रके हो जानेपर लौकिक सम्बन्धका त्याग करूँगा और संन्यास ले लूँगा।'

भोगके बिना रोग नहीं होता। पूर्वजन्मके पापके कारण भी कुछ रोग होते हैं, तो कुछ रोग इस जन्मके भोग-विलासके कारण होते हैं। 'भोगे रोगभयम्।' भोगोपभोगमें रोगोंका भय है। भोग बढ़नेसे आयुष्यका क्षय होता है। हम भोगका उपभोग नहीं कर पाते, भोग ही हमारा उपभोग कर जाता है।

कर्म ऋषिने आदर्श बताया कि 'मेरा विवाह एक सत्-पुत्रके लिये है। उसके बाद मैं संन्यास लूँगा। मेरी यह प्रतिज्ञा तुम्हारी कन्याको मान्य हो तो मैं विवाह करनेको तैयार हूँ।'

मनुमहाराजने पुत्रीसे कहा—यह तो विवाहके समय ही संन्यासकी बात करने लगे हैं।

किंतु देवहूति भी असाधारण थी।

देवहूतिने कहा—मुझे ऐसे ही पतिकी आवश्यकता थी। कामान्ध होकर संसार-सागरमें डूबनेके लिये गृहस्थाश्रम नहीं है। मेरी ऐसी ही इच्छा थी कि मुझे कोई जितेन्द्रिय पति मिले।

देवको बुलानेवाली शक्ति ही देवहूति है। निष्काम बुद्धि ही देवको बुला सकती है।

देवत्वकी विशेषता

(डॉ० श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय')

'देवत्व' एक पारिभाषिक शब्द है। सामान्यतः दान एवं प्रकाश अर्थात् तेजःसम्पन्नता ही देवताका मुख्य लक्षण है। गीतामें दो प्रकारकी आध्यात्मिक सम्पत्तियोंकी चर्चा है—(१) दैवी सम्पत्ति और (२) आसुरी सम्पत्ति। दैवी सम्पत्तिके महत्वपूर्ण तत्त्व हैं—अभय, अन्तःकरणकी पवित्रता, ज्ञानयोगमें स्थित रहना, दान, इन्द्रिय-निग्रह, स्वाध्याय, तप तथा सरलता आदि।

धनकी तीन गतियाँ हैं—दान, भोग और नाश ! जो दान और भोग नहीं करता उसके वित्तका विनाश निश्चित है—
दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।

यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति ॥

अतएव व्यावहारिक दृष्टिसे जो इस तथ्यको समझकर अपनी समृद्धि और शक्तियोंको दानमें विनियुक्त करता है वह देव है—'ददातीति देवः।' जो केवल अपने प्राणोंका ही पोषण करता है वह असुर है—'असून् प्राणान् रक्षतीत्यसुरः।' और जो केवल समृद्धिकी रक्षा करता रहता है वह है 'राक्षस' 'रक्षतीति रक्षः।'

देवताओंमें सत्त्वगुणकी प्रधानता रहनेसे प्रत्युत्पन्नगतित्व एवं सहयोग, औदार्य आदि भावनाएँ प्रतिष्ठित रहती हैं, जब कि असुरोपरिनिष्ठ राग-द्वेष, छल-कपट एवं राक्षसोंमें व्यामोह,

प्रमाद, कल्मष आदि दुर्गुण रजोगुण तथा तमोगुण-स्वभावको प्रदर्शित करते हैं। इसीलिये देवताओंको जन्मतः कनिष्ठ होनेपर भी असुरों या दैत्योंकी अपेक्षा श्रेष्ठ तथा वन्दनीय माना जाता है।

इस संदर्भमें एक महत्त्वपूर्ण कथा प्राप्त होती है। एक बार असुर अर्थात् सभी दैत्य-दानव मिलकर प्रजापति ब्रह्माके पास गये और उपालम्भ देते हुए बोले—‘पितामह ! हम सभी देवता और दैत्य आपके पौत्र कश्यपजीके पुत्र हैं, बल्कि हम दैत्य तो उनके ज्येष्ठ पुत्र हैं, देवता अनुज होनेके कारण हमसे अवर हैं—छोटे हैं। फिर भी आप सर्वदा देवताओंसे ही अधिक स्नेह करते हैं। आखिर ऐसा पक्षपात क्यों ?

असुरोंकी बात सुनकर ब्रह्माजी कुछ मुसकराये और बोले—‘दितिपुत्रो ! तुम सबका कहना उचित है। तुम लोग और देवता दोनों ही मेरे पौत्रकी संतान हो, इसलिये मुझे दोनोंपर समान प्रीति भी है, तथापि उनकी बुद्धि और उदार भावनासे स्वभावतः मेरा अनुग्रह देवताओंके प्रति अधिक हो जाता है, क्योंकि मैं समष्टिबुद्धिका अधिष्ठाता तथा सृष्टिकर्ता हूँ।’ यह सुनकर दैत्योंको देवताओंके प्रति और भी अमर्ष हुआ और वे बोले—

‘ब्रह्मन् ! बिना दोनोंकी परीक्षा लिये आपने ऐसा किस आधारपर मान लिया ? जो गुण आपने देवताओंमें बतलाये हैं, वे हममें भी तो हो सकते हैं ? कृपया आप परीक्षा लेकर ही इस मतको स्थिर करें।’ ब्रह्माजीने ‘समय आनेपर परीक्षा भी कर ली जायगी’—ऐसा कहकर असुरोंको बिदा कर दिया।

कुछ समय पश्चात् सृष्टिकर्ताने अपने दोनों प्रपौत्रोंको अपने भवनमें भोजन करने-हेतु निमन्त्रित किया। दोनों ही अपने समुदायके साथ ब्रह्मलोक पहुँचकर पितामहके चरणोंमें उपस्थित हुए। दैत्य-दानवोंकी देवताओंसे वैरभावना तो थी ही, शत्रुओंको समक्ष देखकर वह और भी भड़क उठी। वे बोले ‘पितामह ! हम दोनों एक साथ बैठकर भोजन नहीं कर सकते।’ ब्रह्माजीने उनकी रुचिके अनुसार ज्येष्ठता-क्रमको मानकर पहले दैत्योंकी पंक्ति बैठायी। देवता वहाँसे दूर पृथक् कक्षोंमें अपने समयकी प्रतीक्षा करने लगे। बड़ी प्रसन्नतासे दैत्योंकी पंक्ति बैठी। सामने ब्रह्मभवनकी दिव्य, सुस्वादु पायस

(खीर) के पात्र रखे गये। बेचारे असुर आचमन करके भोजनारम्भ करना ही चाहते थे कि तभी ब्रह्माजी बोल उठे—

‘असुरो ! आपलोग भोजन करें, इसके पहले मेरी एक शर्त है, उसपर ध्यान दें।’

आपलोग भोजन अवश्य करें, किंतु उसमें आपलोगोंके हाथकी कुहनी नहीं मुड़नी चाहिये। शर्त सुनकर असुर तो मन-ही-मन खीजसे भर गये, फिर भी पितामहकी शर्तका पालन तो करना ही था। बेचारे सीधे हाथोंसे ग्रास उठाते, बिना कुहनी मोड़े हाथ मुँहके पासतक तो जा नहीं सकता था, किसी प्रकार उसे मुँहकी सीधमें लाकर ऊपरसे ही ग्रास छोड़ देते। इस तरह कुछ मुखमें, कुछ सिरमें, कुछ अन्य अवयवोंमें ग्रासोंके गिर जानेसे वे भूखे ही रह गये। क्रुद्ध और लज्जित होकर उन्होंने यथाकथञ्चित् भोजन किया।

ब्रह्माजीने असुरोंकी ओर मुसकराते हुए एक अर्थपूर्ण दृष्टि डाली और फिर उन्हें वहीं आसनोंपर बैठा दिया। इसके बाद देवताओंकी भी वैसी ही पंक्ति बैठी, वैसे ही पायसका परिवेषण हुआ और भोजनारम्भके कुछ ही क्षण पूर्व वही शर्त उनके प्रति भी रखी गयी।

देवताओंने एक क्षण विचार किया, परस्पर देखकर स्मितपूर्वक कुछ इङ्गित किया और दूसरे ही क्षण दो समानान्तर पंक्तियोंमें विभक्त होकर बिलकुल समीप—आमने-सामने हो गये। अब भोजन करनेमें क्या समस्या रह गयी। आमने-सामने बैठे हुए अपने बन्धुओंके मुखमें बिना कुहनी मोड़े ही वे पायसके मधुर ग्रास समर्पित करने लगे और परस्पर सहयोग—सहकारने सभीको आकण्ठ तृप्त और समुल्लसित कर दिया।

पितामहकी परीक्षा पूरी हो गयी थी, असुरोंके पास और कुछ कहनेको शेष नहीं था। प्रजापतिने देवताओंकी अप्रतिम विशेषता—बुद्धिमत्ता और सहयोग-भावनाको प्रमाणित करके उनके प्रश्नका उत्तर दे दिया था।

यदि ये दैवी गुण मनुष्यके जीवनमें भी आ जायँ तो वह भी लौकिक दृष्टिसे देवता बन सकता है, क्योंकि देवत्व तो सद्गुणोंकी साधनाका अपर पर्याय ही है।



राम ते अधिक राम कर दासा

(श्रीश्यामनारायणजी शास्त्री, रामायणी, साहित्यरत्न)

सत्संगकी महिमाका वर्णन करते हुए श्रीकाकभुशुण्डिजी कहते हैं—हे पक्षिराज गरुड़जी ! मेरे मनमें ऐसा विश्वास है कि भगवान् रामके दास उनसे कम नहीं, बल्कि किसी अंशमें उनसे कुछ अधिक ही हैं। भगवान् श्रीरामचन्द्र समुद्रके समान हैं और धीर-बुद्धिवाले संत-जन सर्वत्र वृष्टिदायक कल्याणकारी जलवाहक मेघके सदृश हैं। भाव यह है कि संत लोग भगवान्का साक्षात्कार कर सामान्य जनताके पास पहुँचकर उनके कृपालु स्वभाव एवं चरित्रका वर्णन करते हैं और उन्हें भी भगवत्प्राप्तिका मार्ग दिखलाते हैं। यही संत या भगवद्भक्तोंकी भगवान्से विशेषता है। जैसे समुद्र सब जगह नहीं घूमता, वैसे भगवान् भी अपनी त्रिपादविभूतिसे संयुक्त होकर अपने नित्यनिवास क्षीरसिन्धु या वैकुण्ठमें ही स्थित रहते हैं। नारदादि संतजन मेघके सदृश भगवान् (समुद्र) का संदेश तथा उनके रहस्योंको ग्रहण कर समस्त संसारमें फैलाते हैं। भगवान् चन्दनके वृक्ष हैं तो संत एवं भगवद्भक्त शीतल-मन्द एवं चन्दनकी सुगन्धको दूर-दूरतक प्रवाहित, प्रसारित करनेवाले वायुदेवताके समान हैं। उत्तरकाण्डमें कहा गया है—

मोरें मन प्रभु अस बिस्वासा । राम ते अधिक राम कर दासा ॥
राम सिन्धु घन सज्जन धीरा । चंदन तरु हरि संत समीरा ॥

शङ्का हो सकती है कि जब भगवान्के समान कोई नहीं हो सकता तो उनसे बढ़कर कोई क्या और कैसे हो सकता है ? भगवान्ने स्वायम्भुव मनुसे स्वयं ही कहा था—

आपु सरिस खोजौ कहँ जाई ।

—अन्यान्य उदाहरण भी हैं—

जेहि समान अतिसय नहि कोई ।

निरुपम न उपमा आन राम समान रामु निगम कहै ।

—फिर 'न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यः' (गीता)

आपके समान भी जब कोई नहीं है तो आपसे अधिक तो कोई हो ही कैसे सकता है ? तब 'राम ते अधिक राम कर दासा।' कैसे संगत होगा ? यह परम सत्य है। फिर भी संतों, भगवद्भक्तोंका समस्त शास्त्र, पुराणेतिहासादिके अतिरिक्त अपने भी जीवनका जो अनुभव होता है, वह शास्त्रादिके विपरीत नहीं होता। भगवान् श्रीसदाशिव अपना अनुभव कह

रहे हैं—

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना । सत हरि भजनु जगत सब सपना ॥

गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

मोरें मत बड़ नामु दुहू तें ।

इसी प्रकार श्रीभुशुण्डिजी भी—

मोरें मन प्रभु अस बिस्वासा । राम ते अधिक राम कर दासा ॥

—अपना अनुभव अनेक कल्पोंका बताते हैं। जो सिद्धान्त सत्य है—वह कैसे है ? इसपर कुछ विचार शास्त्रानुसार ही लिखा जा रहा है। दासके लक्षण भी भगवान्ने स्वयं अपने श्रीमुखसे श्रीकाकभुशुण्डिजीको बतलाये हैं—

निज सिद्धांत सुनावउँ तोही । सुनु मन धरु सब तजि भजु मोही ॥

मम माया संभव संसारा । जीव चराचर बिबिधि प्रकारा ॥

सब मम प्रिय सब मम उपजाए । सब ते अधिक मनुज मोहि भाए ॥

तिन्ह महँ द्विज द्विज महँ श्रुतिधारी । तिन्ह महँ निगम धरम अनुसारी ॥

तिन्ह महँ प्रिय बिरक्त पुनि ग्यानी । ग्यानिहु ते अति प्रिय बिग्यानी ॥

तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा । जेहि गति मोरि न दूसरि आसा ॥

पुनि पुनि सत्य कहउँ तोहि पाहीं । मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं ॥

भगति हीन बिरंचि किन होई । सब जीवहु सम प्रिय मोहि सोई ॥

भगतिवंत अति नीचउ प्राणी । मोहि प्रानप्रिय असि मम बानी ॥

यहाँ इतने बड़े संसारमें भगवान्को अपना सेवक, दास, भक्त प्राणप्रिय होता है, यह स्पष्ट किया है। गीतामें भी 'भक्तिमान् यः स मे प्रियः' कहा गया है। भगवान् केवल भक्तिसे ही प्रसन्न होते हैं—

भक्त्या तुष्यति केवलं न तु गुणैर्भक्तिप्रियो माधवः ।

भक्तोंकी महिमासे समस्त पुराण भरे पड़े हैं। तभी भुशुण्डिजीने मेघ तथा पवन दो उदाहरण दिये। पवनकी गति सर्वत्र है। वह चन्दनकी गन्धको लेकर अन्य वृक्षोंके सारमें बसा देता है।

मन्यामहे मलयमेव यदाश्रयेण

कंकोलनिम्बकुटजा अपि चन्दनाः सुः ।

इसी प्रकार संतों, भगवद्भक्तोंमें ही यह शक्ति है कि भगवान्का भाव लेकर दूसरोंके अन्तःकरणको भगवद्भाव-भावित करके फलरूपा भक्ति प्रदान करते हैं।

जैसे चन्दनका वृक्ष सुगन्धसे पूर्ण होनेपर भी किसी वृक्षको अपने समान सुगन्धित नहीं बना पाता। यह विशेषता पवनकी ही है कि वह चन्दनकी सुगन्ध लेकर अन्य वृक्षोंको चन्दनके समान सुगन्धित कर देता है। वैसे ही भगवान् भक्तिसे पूर्ण हैं, संत पवनके समान हैं। ये भगवान्की भक्ति दूसरे मनुष्योंमें प्रवेश कराकर उस मनुष्यको भी अपने सदृश संत एवं भगवद्भक्त बना देते हैं। इसीलिये वे—‘*होत तरन तारन नर तेऊ ॥*’ बन जाते हैं।

सत्संगतिकी महिमा अपार है। वाल्मीकि, नारद, अगस्त्य आदिने अपने मुखसे ही अत्यन्त साधारण स्थितिसे महात्मा बननेका कारण सत्संग बतलाया है। यहाँतक कि विश्वमें आजतक जिस-किसीको ज्ञान, विद्या, यश, गति, मुक्ति या अन्य किसी प्रकारका सच्चा श्रेय हुआ है, उसके मूलमें एकमात्र सत्संगति ही कारण रही है। इसलिये सत्संगति ही समस्त मोद एवं मङ्गलका मूल कही गयी है, वही सच्ची सिद्धि है और दूसरी सिद्धियाँ तथा दूसरे श्रेष्ठ कर्म तो साधन-स्वरूप हैं—

सत्संगत मुद मंगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला ॥

इसके उदाहरणके रूपमें गोस्वामी तुलसीदास महर्षि भरद्वाजके मुखसे उद्गार प्रकट करते हुए कहते हैं कि सब साधनोंका फल भगवान् सीतारामका दर्शन हुआ, किंतु उस फलका भी परम फल भरत-जैसे भगवद्भक्त और संतका दर्शन हो गया, जिससे तीर्थराज प्रयागसहित हम सभी ऋषि-मुनियोंका परम सौभाग्य जाग उठा और हमलोग सर्वथा कृतकृत्य हो गये, यहाँतक कि सारा जगत् पवित्र एवं कृतार्थ हो गया—

सब साधन कर सुफल सुहावा। लखन राम सिय दरसु पावा ॥
तेहि फल कर फलु दरस तुम्हारा। सहित पयाग सुभाग हमारा ॥
भरत धन्य तुम्ह जसु जगु जयऊ। कहि अस पेम मगन मुनि भयऊ ॥

समस्त संसारके सृष्टि, पालन, संहारकर्ता भगवान् अपने दासोंकी महिमा बढ़ानेके लिये स्वयं प्रयत्नशील रहते हैं। इस कारण ‘*राम ते अधिक राम कर दासा*’ होना परम स्वाभाविक ही है। क्योंकि—

अधिक बढ़ावत आपते जनमहिमा रघुबीर।

सबरी पद-रज-परस ते सुद्ध भयो सर-नीर ॥

परम भक्तिमती शबरीके अपमानसे जब सरोवरका जल दूषित हो गया तो प्रभु श्रीरामके शबरी-आश्रममें पधारनेपर अपमान करनेवाले मुनिकुमारोंने भगवान्से प्रार्थना की कि इस सरोवरके जलको आप स्वयं शुद्ध कर दीजिये। श्रीरामने उत्तर दिया—

मतंगमुनिविद्वेषाद्रामभक्तावमानतः ।

जलमेतादृशं जातं भवतामभिमानतः ॥

‘आपके गुरु मतंगजीसे द्वेष एवं रामभक्तिमती शबरीके अपमान तथा स्वयं जातीय अभिमानके कारण ही यह जल दूषित हो गया।’ अब तो फिर—

एक उपाय अहै मुनि बृंद बनै नहि जाति गुमान किए।

सबरी अपमान की छूति लगी सो मिटै सबरी अस्त्रान किए ॥

अन्तमें मुनियोने शबरी माँसे प्रार्थना की। उसके स्नान करते ही उस सरोवरका जल परम निर्मल, स्वच्छ, सुगन्धित हो गया। भक्तकी महिमाको भक्त-भक्तिमान् स्वयं भगवान् ही बढ़ानेको तैयार रहते हैं। वे तो अर्जुनसे यहाँतक कहते हैं कि—

ये मे भक्तजनाः पार्थ न मे भक्ताश्च ते जनाः ।

मद्भक्तानां च ये भक्तास्ते मे भक्ततमा मताः ॥

दास भक्त भी स्वयंको प्रभुके ही समर्पण कर देता है। उसका स्वयंका अहं कुछ होता ही नहीं। आलवन्दार-स्तोत्रमें कहा गया है कि ‘हे प्रभो ! जो कुछ मैं हूँ और जो कुछ मेरा है, वह सर्वस्व तो आपका ही है। यह विचार करनेपर स्पष्ट हो जाता है कि आपको समर्पण करूँ तो क्या करूँ, क्योंकि यह सब तो आपका ही दिया हुआ है।’

मम नाथ यदस्ति योऽस्यहं सकलं तद्धि तवैव माधव ।

नियतः स्वमिति प्रबुद्धधीरथवा किन्नु समर्पयामि ते ॥

भक्त भगवान्को स्वयं समर्पित एवं भगवदाश्रयी होता है। इसी कारण भगवान् भी ‘मयि ते तेषु चाप्यहम्’ का ही निर्वाह करते हैं। भक्तका निजी अहंकार कुछ नहीं, वह तो ‘जनहि मोर बल’ से बलवान् होता है। जिसके साथ भगवान्का स्वयं बल साथमें होगा और फिर भक्त-महिमा वह स्वयं ही बढ़ाना चाहेंगे तो ‘राम ते अधिक राम कर दासा’ में किसी प्रकारके संदेहका अवकाश ही नहीं रहता। (क्रमशः)

गीता-तत्त्व-चिन्तन

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

गीतामें लोकसंग्रह

साधकात् प्रभुसिद्धाभ्यां जायते लोकसंग्रहः ।

येनोन्मार्गं परित्यज्य भवन्ति धार्मिका जनाः ॥

लोक शब्द स्वर्ग, मृत्यु और पाताल—इन तीन लोकोंका वाचक है। इन तीनों लोकोंकी मर्यादाको स्थायी रखनेके लिये कर्म करना 'लोकसंग्रह' है। यह लोकसंग्रह मनुष्यके ही अधीन है; क्योंकि मनुष्य-शरीरमें किये गये कर्मोंके फलरूपमें ही ये स्वर्ग, मृत्यु और पाताल—तीनों लोक होते हैं (१४।८)।

जिसको लोग आदरकी दृष्टिसे देखते हैं, आदर्श मानते हैं, और जिसके आचरणों तथा वचनोंसे लोग उन्मार्गसे बचकर सन्मार्गपर चलते हैं, उसके द्वारा लोकसंग्रह होता है। यह लोकसंग्रह साधक, सिद्ध और भगवान्—इन तीनोंके द्वारा होता है; जैसे—

(१) साधकके द्वारा लोकसंग्रह—भगवान्ने अर्जुनको साधकमात्रका प्रतिनिधि बनाकर कहा कि पहले राजा जनक—जैसे महापुरुष कर्मोंके द्वारा ही परमसिद्धिको प्राप्त हुए हैं; अतः लोकसंग्रहको देखते हुए तू भी उनकी तरह अनासक्तभावसे कर्म करनेके योग्य है (३।२०)।

(२) सिद्धके द्वारा लोकसंग्रह—सिद्ध महापुरुष जो-जो आचरण करते हैं, अन्य मनुष्य भी वैसा-वैसा ही आचरण करते हैं और वे अपनी वाणीसे जो कुछ कह देते हैं, दूसरे लोग भी उसीका अनुवर्तन करते हैं (३।२१)। कर्मोंमें आसक्त मनुष्य जिस प्रकार सावधानी और तत्परतापूर्वक कर्म करते हैं, सिद्ध महापुरुष भी लोकसंग्रहकी इच्छासे अनासक्तभावसे उसी प्रकार कर्म करे (३।२५)।

(३) भगवान्के द्वारा लोकसंग्रह—भगवान् अपने विषयमें कहते हैं कि त्रिलोकीमें मेरे लिये न तो कुछ करना बाकी है और न कुछ पाना बाकी है, तो भी मैं कर्तव्य-कर्म करता हूँ। यदि मैं निरालस्य होकर कर्तव्य-कर्म न करूँ तो लोग मेरा ही अनुवर्तन करेंगे अर्थात् वे भी अपना कर्तव्य-कर्म छोड़ देंगे, जिससे उनका पतन हो जायगा। अतः यदि मैं

कर्तव्य-कर्म न करूँ तो मैं संकरताको उत्पन्न करनेवाला और प्रजाका नाश करनेवाला बन जाऊँगा (३।२२—२४)।

तात्पर्य है कि वास्तवमें लोकसंग्रह भगवान् और सिद्धके द्वारा ही होता है; क्योंकि उनका अपना कोई स्वार्थ नहीं होता। ऐसे तो साधक भी मर्यादामें चलता है और उसके द्वारा भी लोकसंग्रह होता है, पर वैसा लोकसंग्रह नहीं होता; क्योंकि साधकमें अपने कल्याणका प्रयोजन भी रहता है।

ज्ञातव्य

भगवान् और सिद्ध महापुरुषका भाव सर्वथा निष्काम होनेसे उनके द्वारा शुद्ध, आदर्श लोकसंग्रह होता है। साधकका भाव सर्वथा निष्काम नहीं होता, प्रत्युत उसका उद्देश्य निष्काम होनेका होता है; अतः उसके द्वारा गौणरीतिसे लोकसंग्रह होता है। सामान्य मनुष्यमें सकामभाव रहता है; अतः उसके द्वारा विशेष लोकसंग्रह नहीं होता। वह जो शास्त्रविहित क्रिया करता है, केवल उस क्रियासे ही सामान्य लोकसंग्रह होता है। लोकसंग्रह दो तरहसे होता है—

(१) आचरणसे—मनुष्य जिस वर्ण, आश्रममें स्थित है, उसके अनुसार शास्त्रने जिसके लिये जिस कर्मकी आज्ञा दी है, उस कर्मको निष्कामभावसे केवल संसारके हितके लिये ही करना।

(२) वचनसे—अपने सिवाय दूसरे वर्णों एवं आश्रमोंमें रहनेवाले जितने लोग हैं, उनको उन्मार्गसे बचाकर सन्मार्गपर लाना।

इन दोनों तरहसे होनेवाले लोकसंग्रहमें अपने आचरणोंसे लोगोंपर जो असर पड़ता है, वह असर केवल वचनोंसे नहीं पड़ता। जिसके आचरण अपने वर्ण-आश्रमकी मर्यादाके अनुसार होते हैं, उसीके वचनोंका असर दूसरोंपर पड़ता है। इन्हीं बातोंको बतानेके लिये भगवान्ने तीसरे अध्यायके इक्कीसवें श्लोकके पूर्वार्धमें 'यत्'- 'यत्', 'तत्'- 'तत्' और 'एव'—ये पाँच शब्द दिये हैं; और उत्तरार्धमें 'यत्' तथा 'तत्'—ये दो ही शब्द दिये हैं*। इसका तात्पर्य यह है कि अपने आचरणका प्रभाव दूसरोंपर अधिक पड़ता है और

* यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः । स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ (गीता ३।२१)

वचनोंका प्रभाव दूसरोंपर कम पड़ता है; अतः आचरण करना मुख्य है। हाँ, कोई बहुत श्रद्धालु हो तो उसपर केवल वचनोंका भी असर पड़ सकता है।

मनुष्य अपने आचरण लोकमर्यादाके अनुसार ही करे। उनमें किसी प्रकारका दिखावटीपन न हो। उन आचरणोंको कोई देखे या न देखे, कोई माने या न माने, इसकी परवाह न करके वह समुदायमें अथवा एकान्तमें सुचारुरूपसे अपने कर्तव्यका पालन करता रहे। उन कर्मोंको करनेमें किञ्चिन्मात्र भी व्यक्तिगत स्वार्थका भाव न हो, प्रत्युत विश्वमात्रके हितका भाव हो। तात्पर्य है कि सम्पूर्ण कर्म संसारमात्रके हितकी दृष्टिसे ही करे।

अपने कल्याणका भाव रखकर कर्म करना भी स्वार्थ है। अतः लोकसंग्रह करनेवाले मनुष्यको इस भावका भी त्याग कर देना चाहिये और केवल संसारमात्रके कल्याणका भाव रखना चाहिये। यद्यपि अपने कल्याणका भाव रखना सकामभाव नहीं है, तो भी व्यक्तिगत कल्याणका भाव लोकसंग्रहको पूरा नहीं होने देता। जो मनुष्य अपने कल्याणका भी भाव न रखकर, केवल दूसरोंके कल्याणका भाव रखकर अपने कर्तव्यका पालन करता है, उसके द्वारा स्वतः ही लोगोंका हित होता है। जैसे बर्फके पास जानेपर ठण्डक मिलती है, आगके पास जानेपर गरमी मिलती है, ऐसे ही उस मनुष्यके पास जानेपर, उसको याद करनेपर भी लोगोंका कल्याण होता है। अगर ऐसा मनुष्य गृहस्थाश्रममें हो तो उसके घरका अन्न-जल लेनेवालेका भी कल्याण हो जाता है और अगर वह संन्यासाश्रममें हो तो वह जिसके अन्न-जल आदिको ग्रहण करता है, उस (अन्न-जल देनेवाले) का भी कल्याण हो जाता है। ऐसे लोकसंग्रही महापुरुषके दर्शन, भाषण और चिन्तनसे भी लोगोंका कल्याण होता है। उसके जीवित रहनेपर उसके आचरणों, वचनों, भावोंका प्राणियोंपर जैसा असर पड़ता है, वैसा ही असर उसका शरीर न रहनेपर भी पड़ता है। जिस स्थानपर वह महापुरुष रहता था, उस स्थानपर कोई अपरिचित व्यक्ति भी चला जाय तो उस व्यक्तिको वहाँ बड़ी शान्ति मिलती है। उस महापुरुषके दिये हुए उपदेश आकाशमें स्थायीरूपसे रहते हैं, जो अधिकारी व्यक्तिको उसकी जिज्ञासा, उत्कण्ठाके अनुसार मिलते रहते

हैं। अधिकारी व्यक्तिको इस बातका पता नहीं लगता कि वे भाव कहाँसे आये, पर वह उन भावोंके आनेमें भगवान् या संतोंकी कृपाको ही कारण मानता है।

महापुरुषके द्वारा जो भी क्रियाएँ होती हैं, वे सब आदर्शरूपसे होती हैं। कहीं-कहीं उनकी क्रियाएँ अनुयायी-रूपसे भी दीखती हैं। जो आस्तिक लोग शास्त्रविहित कर्मोंमें एवं उन कर्मोंके फलोंमें दृढ़ श्रद्धा-विश्वास रखते हुए सकामभावसे तत्परतापूर्वक कर्म करते हैं, उन लोगोंकी तरह ज्ञानी महापुरुष भी तत्परतासे कर्म करता है (३।२५)।

कर्मयोगी साधकमें कर्म करनेका जो स्वभाव होता है, वही स्वभाव सिद्धावस्थामें भी रहता है। अतः कर्मयोगसे सिद्ध महापुरुषमें स्वाभाविक ही कर्म करनेकी प्रवृत्ति दीखती है। परंतु ज्ञानयोगसे सिद्ध महापुरुषमें वैसी प्रवृत्ति नहीं दीखती। कारण कि ज्ञानयोगी पहलेसे ही अपनेको असङ्ग अनुभव करता है। अतः सिद्धावस्थामें उसकी कर्मों और पदार्थोंसे स्वाभाविक ही उपरति रहती है, जो ज्ञानमार्गके साधकोंके लिये आदर्श होती है; और उस महापुरुषकी पदार्थ आदिसे जो तटस्थता है, वह दुनियामात्रके लिये हितकारी होती है।

प्रश्न—सिद्ध महापुरुषमें अहंभाव नहीं रहता, फिर उसके द्वारा लोकसंग्रह, क्रियाएँ कैसे होती हैं ?

उत्तर—उस महापुरुषके शरीरद्वारा क्रिया होनेमें दो कारण हैं—एक उनका प्रारब्ध और दूसरा प्राणियोंका भाव। जिस प्रारब्धके प्रवाहसे उसको शरीर मिला है, उसी प्रारब्धसे उसके द्वारा सभी क्रियाएँ होती हैं; और उसके सामने जो प्राणी आते हैं, उन प्राणियोंके भावोंके अनुसार ही उसके द्वारा क्रियाएँ होती हैं। अगर उसके पास प्रेमभाव रखनेवाला, श्रद्धालु मनुष्य आता है तो उसके साथ उस महापुरुषका बर्ताव भी प्रेमयुक्त होता है; और अगर उदासीन अथवा वैरभाव रखनेवाला मनुष्य आता है तो उस महापुरुषका बर्ताव भी उदासीनकी तरह होता है (वैरभाव महापुरुषमें होता ही नहीं)।

संसारमें ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग आदि जिस योग-साधनकी जिस समय आवश्यकता होती है, उस समय संत-महापुरुषोंके द्वारा उसी योग-साधनका प्रचार होता है। जैसे, जिस समय संसारके लिये ज्ञानयोगकी आवश्यकता थी, उस समय श्रीशंकराचार्यजीके द्वारा विशेषतासे ज्ञानयोगका

प्रचार हुआ; और जिस समय संसारके लिये भक्तियोगकी आवश्यकता थी, उस समय श्रीरामानुजाचार्यजीके द्वारा विशेषतासे भक्तियोगका प्रचार हुआ। जैसे भगवान्‌के द्वारा होनेवाली सभी क्रियाएँ प्राणिमात्रके हितके लिये ही होती हैं, ऐसे ही महापुरुषके द्वारा होनेवाली सभी क्रियाएँ प्राणिमात्रके हितके लिये स्वतः होती हैं। उसके आचरण एवं वचन (उपदेश) — दोनों ही प्राणिमात्रके हितके लिये होते हैं, पर उसके भीतर हित करनेका अभिमान नहीं होता। जैसे सूर्य भगवान्‌से दुनियामात्रको प्रकाश एवं कर्म करनेकी प्रेरणा मिलती है, ऐसे ही उस महापुरुषके आचरणों तथा वचनोंसे दुनियामात्रको प्रकाश (ज्ञान) एवं कर्तव्य-कर्म करनेकी प्रेरणा मिलती है, चाहे उसका शरीर रहे अथवा न रहे। जब भगवान् श्रीराम और श्रीकृष्णके अवतार हुए, तब उनको साक्षात् भगवान् माननेवाले मनुष्य बहुत कम थे, पर आज उनको भगवान् माननेवाले मनुष्योंकी संख्या ज्यादा है। कलियुगके कारण मनुष्योंके आचरणोंमें तो शिथिलता आयी है, पर उनको भगवान् माननेका भाव बढ़ा है। ऐसे ही महापुरुषोंका शरीर न

रहनेके बाद उनके सिद्धान्तोंका, उनके वचनोंका विशेष प्रचार होता है।

जबतक मनुष्यमें अहंभाव रहता है, तबतक उसकी सम्पूर्ण क्रियाएँ दुनियाके लिये हितकारी नहीं होतीं। अहंभाव मिटनेपर उसकी सम्पूर्ण क्रियाएँ दुनियाके लिये हितकारी, आदर्श हो जाती हैं। हाँ, सकामभावसे कर्म करनेवाले मनुष्योंके कर्म भी दूसरोंके लिये आदर्श होते हैं, पर वे कर्म कल्याण करनेवाले नहीं होते। सकामभावसे कर्म करनेवाले मनुष्योंमें उतनी ही शुद्धि आती है, जितनेसे वे भोगोंको भोग सकें। उनमें वह शुद्धि नहीं आती, जिससे कल्याण हो जाय।

जिन गाँवोंमें, प्रान्तोंमें संत-महापुरुष हुए हैं अथवा गये हैं, वे गाँव आज भी शुद्ध हैं अर्थात् आज भी वहाँके लोगोंमें आस्तिकता, अच्छे विचार, अच्छे आचरण आदि देखनेको मिलते हैं। परंतु जिन गाँवोंमें न तो कोई संत हुआ है और न कोई संत गया ही है, उन गाँवोंके लोग भूत-प्रेतोंकी तरह ही होते हैं।

गौका महत्त्व क्यों ?

ॐ नमो गोभ्यः श्रीमतीभ्यः सौरभेयीभ्य एव च ।

नमो ब्रह्मसुताभ्यश्च पवित्राभ्यो नमो नमः ॥

भगवती लक्ष्मी प्रायः चञ्चला कही गयी हैं। वे लाख प्रयत्न करनेपर भी स्थिर नहीं रहतीं। धर्म-कर्ममें तनिक भी वैगुण्य उत्पन्न होते ही वे अपने आश्रितोंका परित्यागकर तत्काल चली जाती हैं, किंतु गौओंमें उनका शाश्वत अधिष्ठान है। यहाँतक कि गोबरको उनका नित्य-निवास माना गया है। इसीलिये गौको सच्ची श्रीमती कहा गया है। सच्ची श्रीमतीका अर्थ भी व्यापक है। आचार्य व्याडिके अनुसार सद्धर्म, सद्बुद्धि, सरस्वती, समस्त मङ्गल, परस्पर सौहार्द, सौजन्य, कीर्ति, लज्जा और शान्ति—ये सब शुद्ध श्रीके लक्षण हैं। ये सभी गो-सेवाजनित श्रीके ही आश्रित रहते हैं। गो-सेवारहित श्री रज तथा तमोगुणोंसे प्रभावित होनेके कारण स्वार्थ, लोभ, अविश्वास, अहंकार एवं स्पर्धा आदि दोषोंको उत्पन्न कर साधकको शुद्ध दृष्टिसे शून्य बनाकर द्यूतकार, चाटुकार एवं दुर्गुणी मनुष्योंका साहचर्य करा देती है और परिणामस्वरूप

पुनः कलह, अशान्ति, छल, छद्म आदि दुराचारोंद्वारा उसके नरकका मार्ग प्रशस्त कर देती है।

गायोंके दर्शन एवं चिन्तन मात्रसे ही मनमें शान्ति, पवित्रता और सभी प्रकारके कल्याण-मङ्गलका उदय होने लगता है। शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है कि यदि स्वप्नमें काली, उजली या अन्य किसी भी वर्णकी गायका दर्शन हो जाय तो उस व्यक्तिके समस्त कष्ट नष्ट हो जाते हैं, फिर प्रत्यक्ष गोभक्तिके चमत्कारका क्या पूछना ?

भगवान् गोविन्द जड-चेतनात्मक समस्त प्राणियोंमें निवास करते हैं, पर गौओंमें विशुद्ध सत्त्वमय होनेसे उनका निवास भगवती लक्ष्मीकी अपेक्षा भी अधिक है और इसी कारण सभी देवता, सभी पुण्य, सभी तीर्थ, सभी सद्गुण, सभी ऐश्वर्य, सभी कल्याण-मङ्गल एवं सुख-शान्ति भी गौके शरीरमें साक्षात् निवास करते हैं, जिन्हें विशुद्ध ज्ञानदृष्टिवाले प्रत्यक्ष देख सकते हैं। इसी कारण भगवान् गोविन्द गो-सेवकपर अपनी पूर्ण कृपा व्यक्त कर उसके सामने सम्यक्‌रूपसे साक्षात्

प्रकट होकर गौरूपसे ही उसका समस्त कल्याण कर देते हैं। इसीलिये गोमती विद्या आदिमें गौको प्रणाम करनेमें ही सर्वाधिक पुण्य बताया गया है।

गो-सेवाके चमत्कारके सामने दूसरे सभी चमत्कार यद्यपि नगण्य हैं, किंतु अल्पबुद्धिवाले सकाम गोभक्तोंके लिये सामान्य गाय भी कामधेनु बनकर उसकी सभी इच्छाओंको पूर्ण करती हुई अन्तमें ज्ञान प्रदानकर उसे भी अपना वैष्णवीरूप दिखाकर पूर्णरूपसे चमत्कृत कर सर्वथा कृतार्थ कर देती है।

प्राचीन ऋषि-मुनियों, राजा-महाराजाओं तथा अन्य प्रायः सभी मनुष्योंको भी उपर्युक्त गो-सेवाका चमत्कार ज्ञात था। वैश्य एवं गोपालगणोंका तो मुख्य धर्म ही गो-सेवा एवं गो-पालन था। कृषकोंको भी कृषिके लिये सभी प्रकार गोवंशका समाश्रयण आवश्यक था और प्रसिद्ध है कि भारतमें गो-दुग्धकी नदियाँ बहती थीं। गोकुलके महागोपों—नन्द, सुनन्द, उपनन्द, महानन्द आदिके पास लाखों गायें थीं और सम्पूर्ण भारतवर्ष गोधन एवं गव्य पदार्थोंसे सर्वथा सम्पन्न था। अकिञ्चन ऋषि-आश्रमोंमें अन्य सब कुछका भले ही अभाव दिखे, किंतु गायें वहाँ भी भरी पड़ी थीं। इसीलिये उनके शिष्योंमें उनके ही गोत्रोंका प्रवर्तन हुआ। इसी गो-सेवाकी प्रधानतासे ही शिष्य और गुरु सभी प्रकारके दिव्य, सूक्ष्म, अदृष्ट, अव्यवहित, अलौकिक, भूत, भविष्य, वर्तमानके ज्ञानोंके साथ सम्पूर्ण लौकिक तथा शास्त्रीय ज्ञान-परिज्ञानोंसे युक्त, सर्वथा संशयशून्य ब्रह्मसाक्षात्कार भी करनेमें समर्थ थे। यहाँतक कि साक्षात् ब्रह्म भी गोलोकका परित्याग कर भारतीय वसुन्धरामें गोकुलका बाहुल्य देख अत्यन्त लावण्यमय गोविन्दका रूप धारण करके उनकी परिचर्याके लिये अवतीर्ण हो आये और यहाँ गो-सेवाके चमत्कारोंका प्रदर्शन करते हुए अद्भुत गीताशास्त्रके वक्ता ज्ञान-विज्ञान, शौर्य-पराक्रम तथा ऐश्वर्यके एकमात्र केन्द्रबिन्दु बनकर 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' के रूपमें सभी देवता, देवियों, दिव्य गोपियों, भक्तजनों एवं ऋषि-मुनियोंके भी

उपास्य बन गये। श्रीशुकदेवजी श्रीमद्भागवतमें कहते हैं कि भगवान् गोविन्द स्वयं अपनी समृद्धि, रूपलावण्य एवं ज्ञान-वैभवको देखकर चकित हो जाते थे—

विस्मापनं स्वस्य च सौभाग्यद्वेः

परं पदं भूषणभूषणाङ्गम् ॥

(३।२।१२)

तात्पर्य यह है कि महान् आश्चर्यकर ऋद्धि-सिद्धियोंकी अवर्णनीय परम्परा अपने चारों ओर घिरे देख भगवान् श्रीकृष्णको भी आश्चर्य होता था कि सभी प्रकारके युगपद्विरोधी ऐश्वर्य, ज्ञान, बल और ऋषि-मुनि, भक्त राजागण तथा देवी-देवताओंका सर्वस्व-समर्पण—ये मेरे पास एक ही साथ सब कैसे आ गये ? वास्तवमें यह सब उनकी गो-सेवाका ही फल था, जिसमें वे अन्ततक तल्लीन रहे।

ऐसे चमत्कारोंकी भारतीय साहित्यमें कोई गणना नहीं है, किंतु दुःखकी बात है, आज धर्मनिरपेक्ष भारतमें कुछ लोग ईश्वर एवं धर्मको नहीं मानते और जडवादी नास्तिक पाश्चात्त्योंके अनुकरणमें ही बुद्धिमत्ता मानते हुए गोवंशकी उपेक्षा कर घातक अस्त्रयुक्त आधुनिक उपकरणोंका आश्रय लेकर देशका कल्याण करना चाहते हैं, किंतु इससे देशका कल्याण न होकर सम्पूर्ण देशमें अनर्थकी परम्परा, हिंसा आदि दुष्प्रवृत्तियाँ, अनुदिनकी वर्धमान सांघातिक महर्घता तथा क्रोध, लोभ आदि असाधु भावनाओंका साम्राज्य छा गया है और सभी प्रकारके अवाञ्छनीय दोष, दुर्गुण व्याप्त हो गये हैं। कृत्रिम घी, दूध, मक्खन आदिमें अपवित्रतम एवं स्वास्थ्यघाती पदार्थोंका प्रयोग होने लगा है। आश्चर्य है कि इसी दुर्बुद्धिको सभ्यताका आदर्श मानकर लोग अपनेको उन्नत मानते जा रहे हैं।

यह असत्-मार्ग है। इस मार्गका सर्वथा परित्यागकर सत्की ओर उन्मुख होना चाहिये। भगवत्कृपासे यदि हृदयमें सात्त्विक बुद्धिका उदय हो जाय और गो-माताकी सच्ची सेवा होने लगे, तो इससे जीवन सफल होकर भगवान्‌के नित्य गोलोकधामकी प्राप्ति हो सकेगी। अस्तु, देवाधिष्ठानभूता, नित्य वन्दनीया गौ माताकी शरण अवश्य ग्रहण करनी चाहिये।

जो तुम्हारे लिये काँटि बोवे, तुम उसके लिये फूल बोओ, तुम्हारे भीतर ही तुम्हारा मन भयानक वैरी है, उसके घातोंसे बचनेके लिये सदा सावधान रहो।—कबीर

स्वप्नसे वैराग्य

राज्याभिषेकके एक दिन पहलेकी बात है। तरुण राजा अपने सुन्दर शयनगृहमें एक पलंगपर लेटा था। रात्रि अधिक हो चुकी थी और सभी सभासद् जा चुके थे। अभी उसकी अवस्था केवल सोलह वर्षकी थी। उसके जन्म और जीवनके सम्बन्धमें सही ज्ञान किसीको भी नहीं। सम्भवतः उसकी माता अपने यौवनकालमें किसी साधारण व्यक्तिसे प्रेम करने लगी थी। इसपर उसके नानाने अत्यन्त क्रोधित होकर उसके माता-पिताकी हत्या करा दी, जब कि उसका जन्म हुए केवल एक ही सप्ताह हुआ था। इसी बीच एक गड़रिया वहाँसे निकला और अनाथ बालकको अपने साथ ले गया। कुछ कहते थे कि बूढ़े राजाने स्वयं वधिकोंको आज्ञा दी थी कि वे बालकको गड़रियेके पास छोड़ दें। जो कुछ भी हो, एक दिन वह अपने धर्मपिताकी भेड़ें चरा रहा था कि कुछ शिकारियोंने उसे खोज निकाला। जब राजा बूढ़ा हुआ, तब उसे चिन्ता हुई कि कहीं किसी दूसरे वंशमें उसका राज्य न चला जाय। इसलिये उसने तरुण राजाको ढुँढ़वाया तथा अपने मन्त्रिमण्डल एवं समस्त प्रजाके सम्मुख उसको अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया।

बालक राजाने अपने सौन्दर्य-प्रेमके लक्षण दिखाने प्रारम्भ कर दिये। उसने तरह-तरहके कीमती एवं अभूतपूर्व सौन्दर्यशाली सामान प्राप्त करनेके लिये भारत, मिस्र, ईरान आदि देशोंको सौदागर भेजे, परंतु उसका सर्वाधिक ध्यान उस लबादेपर था, जो अभिषेकवाले दिन उसे पहनना था। साथ ही हीरे-जवाहरातोंसे जड़े हुए मुकुट तथा मोतियोंकी धारियोंवाले राजदण्डके विषयमें भी वह चिन्तित था। यह लबादा सोनेके तारोंसे बुना जानेवाला था। उसने आज्ञा दी थी कि संसारभरसे कीमती जवाहरात मँगवाये जायँ तथा कलाकार दिन-रात्रि श्रम करके कार्य पूरा करें। वह मन-ही-मन अपनेको वह वस्त्र पहने गिरजेकी वेदीके सम्मुख खड़ा देखता तथा प्रसन्नतासे उसका मुख खिल उठता एवं उसकी आँखोंमें एक अजीब-सी चमक आ जाती।

एक दिन रातको जब घड़ियालने मध्यरात्रि घोषित की, तब उसने घंटा बजाया और सेवकोंने आकर उसके वस्त्र उतार दिये तथा बिस्तरपर गुलाब-जल छिड़क दिया। उनके

जानेके कुछ समय बाद ही उसे नींद आ गयी और उसने यह स्वप्न देखा—

वह एक लंबी नीची दालानमें खड़ा है और चारों ओरसे कर्षकोंके चलनेकी आवाज आ रही है। मूक गम्भीर जुलाहे उनपर झुके हुए हैं तथा दुबले-पतले निर्बल बालक वहीं उनकी सहायता कर रहे हैं। उनके गाल भरपेट खाना न मिलनेके कारण पिचके हुए थे। पतले-पतले हाथ काँप रहे थे। कुछ ढली उम्रकी स्त्रियाँ मेजोंके पास बैठी-सी थीं। उनके मुख भी चिन्ता एवं श्रमसे म्लान हो रहे थे। बड़ी दुर्गन्धपूर्ण एवं उमसभरी हवा थी। तरुण राजा एक जुलाहेके पास गया और उसका कार्य निरखने लगा।

जुलाहेने सक्रोध उसकी ओर देखा और कहा—‘इस प्रकार तू क्यों ताकता है? क्या स्वामीने तुझे अपना जासूस बनाकर भेजा है?’

‘परंतु तुम्हारा स्वामी कौन है?’ तरुण राजाने पूछा।

‘वह भी हमारी ही तरह मनुष्य है, अन्तर केवल इतना है कि जहाँ हम चिथड़ोंमें घूमते हैं, वह सुन्दर वस्त्रोंसे सुसज्जित घूमता है और जहाँ हम भूखसे अशक्त हो रहे हैं, उसे अधिक खानेसे कोई कष्ट नहीं हुआ।’ जुलाहेने बड़ी कटुतासे उत्तर दिया।

जुलाहेने फिर कहा—‘युद्धमें शक्तिशाली लोग अशक्तोंको दास बना लेते हैं, परंतु शान्तिमें निर्धन धनवालोंके दास हो जाते हैं। हमें जीवित रहनेके लिये कार्य करना पड़ता है, पर जो जीविका उस कार्यके करनेपर हमें मिलती है, उससे तो केवल मृत्यु ही सम्भव है। हमारी मेहनतकी कमाईसे वे अपने कोठे भरते हैं और हमारे देखते-ही-देखते हमारे बालक मुरझा जाते हैं। जिन अंगूरोंको हम रक्त-शोणित एक करके पैदा करते हैं, उनकी मदिराका आनन्द दूसरे लोग उठाते हैं। इस तरह यद्यपि हमारी जंजीरें आँखें चाहे देख न सकें, परंतु वे हमें बाँधे हैं। चाहे लोग हमें स्वतन्त्र कहें, पर हम हैं दास ही।’

‘क्या यह सभीके साथ है?’

‘हाँ, सभीके साथ। हमारी अंधेरी गलियोंमें दरिद्रता क्रीडा करती है एवं दुराचार निवास करता है। दुःख हमें सुबह जगाता है एवं लज्जा हमारे साथ रात्रिको शयन करती है। परंतु

तुझे इससे क्या ?'

यह कहकर अत्यन्त घृणासे जुलाहेने अपना कार्य फिर आरम्भ कर दिया। तभी छोटे राजाने देखा कि करघेपर जो धागा लगा था, वह सोनेका था।

इसे देखकर एक विचित्र भयसे वह भर गया तथा पूछा—'यह किसका वस्त्र बुन रहे हो तुम ?'

'यह तरुण राजाका 'रोब' है, पर तुझे इससे क्या ?' उत्तर मिला। और इसी समय राजाने एक चीख भरी तथा उसकी आँख खुल गयी।

तनिक देर बाद वह फिर सो गया। इस बार फिर उसने स्वप्न देखा।

दूसरा स्वप्न इस प्रकार था—

उसने देखा कि वह एक विशाल नावके डेकपर लेटा हुआ है। गहरे लाल रंगका साफा बाँधे एक काला व्यक्ति पास ही एक कालीनपर बैठा है। उस नावको सौ दास खे रहे थे, इनके शरीरपर वस्त्र नामकी वस्तु केवल एक लँगोटीके रूपमें थी। प्रत्येक दास एक-दूसरेसे जंजीरद्वारा बाँधा था। हबशी लोग चारों ओर घूम रहे थे तथा चाबुकोंसे दासोंको हाँक रहे थे। ज्यों ही वे एक खाड़ीके निकट पहुँचे, उन्होंने नाव रोक दी और एक सीढ़ी पानीमें लटका दी। एक दासको, जो अवस्थामें सबसे छोटा था, पकड़कर उसके नाक एवं कानमें मोम भर दिया तथा उसकी कमरसे एक भारी पत्थर बाँध दिया। धीरे-धीरे वह सीढ़ीद्वारा पानीमें उतर गया। कुछ समय पश्चात् वह एक मोती लेकर ऊपर आया। हबशियोंने उससे मोती छीन लिया और उसे फिर जलमें ढकेल दिया। इसी प्रकार वह कई मोती लाया।

अन्तमें जब गोताखोर ऊपर आया, तब इस बार वह जो मोती लाया था, वह सर्वाधिक सुन्दर था। उसका आकार पूर्ण-चन्द्रके समान था, परंतु उस दासके नाक-मुँह आदिसे रक्तस्राव हो रहा था। कुछ समय बाद ही उसकी मृत्यु हो गयी। हबशियोंने उसे उठाया और नावके बाहर फेंक दिया। फिर नावके मालिकने प्रसन्नतापूर्वक उस मोतीको चूमा और कहा—'वह मोती तरुण राजाके राजदण्डमें लगेगा।'

और ज्यों ही राजाने यह सुना, एक चीखके साथ उसकी आँख खुल गयी।

कुछ समय पश्चात् जब इसकी आँख लगी, तब उसने तीसरा स्वप्न देखा, वह इस प्रकार था—

.....एक सूखी हुई नदीकी सतहपर बहुत-से स्त्री-पुरुष श्रम कर रहे थे। वे पृथ्वीमें गहरे गड्ढे करते तथा उनमें घुस जाते। उनमेंसे कुछ बड़ी-बड़ी छेनियोंसे चट्टानों तोड़नेकी चेष्टा करते, दूसरे रेतमें ही टटोलते। वे कैक्टस नामक पौधेको जड़से उखाड़ लेते तथा उसकी गुलाबी कलियोंको पैरोंसे मसल देते। उनमेंसे प्रत्येक व्यक्ति व्यस्त था।

पासकी एक कन्दरामेंसे 'धनलिप्सा' एवं 'मृत्यु' उन्हें देख रही थीं।

मृत्युने कहा—'मैं बहुत थक गयी हूँ। तू इनमेंसे एक तिहाई मुझे ले लेने दे।'

पर धनलिप्साने अपना सिर हिलाया, बोली—'ये सब तो मेरे सेवक हैं।'

इसपर मृत्युने फिर पूछा—'तेरे हाथमें क्या है ?'

'मेरे हाथमें अन्नके तीन दानें हैं। पर तुझे इससे क्या ?'

'उनमेंसे तू एक मुझे दे दे'—मृत्युने याचना की। 'केवल एक, मैं अपनी वाटिकामें लगाऊँगी और यहाँसे चली जाऊँगी।'

'उहह, मैं तुझे एक भी न दूँगी।' यह कहकर धनलिप्साने अपना हाथ अपने वस्त्रमें छिपा लिया।

मृत्यु हँसी। एक प्याला उसने पानीसे भरा। उसमेंसे 'जूड़ी-ताप' निकली और वह सब मनुष्योंके बीचसे गुजरी। उनमेंसे एक तिहाई मरकर गिर पड़े।

इसी प्रकार दूसरी बार इनकार करनेपर मृत्युने दूसरे बुखारको जन्म दिया। 'बुखार' उनसे होकर गुजरा तथा जिस-जिसको उसने छुआ, वही मरकर गिर पड़ा।

तीसरी बार मृत्युने 'प्लेग' को जन्म दिया और उसके कारण कोई भी मनुष्य जीवित नहीं बचा।

तरुण राजाने रोकर पूछा—'ये लोग कौन थे और क्या ढूँढ़ रहे थे ?'

'ये छोटे राजाके मुकुटपर मढ़नेके लिये माणिक एवं पन्ना ढूँढ़ रहे थे।' किसीने पीछेसे उत्तर दिया।

यह सुनकर फिर एक चीखके साथ राजाकी आँख खुल गयी। देखा तो चारों ओर दिन निकल आया था तथा चिड़ियाँ

बाहर बागमें चहचहा रही थीं।

कुछ समय पश्चात् मन्त्री एवं राज्यके उच्चाधिकारी आये तथा उन्होंने झुककर प्रणाम किया। सेवकोंने सोनेके तारोंसे बुना हुआ लबादा, उसका मुकुट एवं राजदण्ड सामने लाकर रख दिया। वे अत्यन्त सुन्दर थे। पर तरुण राजाको रातके स्वप्न याद थे। उसने कहा—‘इन वस्तुओंको यहाँसे ले जाओ, क्योंकि मैं इन्हें नहीं पहनूँगा।’

यह सुनकर सभीको अत्यन्त आश्चर्य हुआ। कुछने सोचा—‘शायद राजा परिहास कर रहा है।’ परन्तु फिर उसने कहा—‘इन वस्तुओंको यहाँसे ले जाकर कहीं छिपा दो। यद्यपि आज मेरे अभिषेकका दिन है, फिर भी मैं इन्हें नहीं पहनूँगा। मेरा यह लबादा ‘दुःख’के करघेमें ‘पीड़ा’के हाथोंद्वारा बुना गया है। माणिकके हृदयमें ‘हत्या’ और मुक्ताके हृदयमें ‘मृत्यु’ निवास करती है।’

यह कहकर तीनों स्वप्न उसने बताये। फिर भी उसके दरबारियोंने उसे समझानेकी चेष्टा की। उन्होंने कहा कि उन वस्तुओंको यदि वह नहीं पहनेगा तो प्रजा उसे अपना राजा माननेसे इनकार कर देगी।

‘सम्भव है, आप सच कहते हों। परन्तु यदि ऐसा है तो उचित होगा कि मैं जैसा इस महलमें आया था, वैसा ही उससे चला जाऊँ।’ यह कहकर उसने सबसे बिदा ली, पुराने भेड़की खालके वस्त्र धारण किये, हाथमें गड़रियोंवाली लाठी ली तथा जंगली गुलाबकी एक शाखा लेकर मोड़ी और सिरपर पहन ली।

और इसी ‘लबादे’, ‘राजदण्ड’, एवं ‘मुकुट’को धारण करके वह नगरकी सड़कोंसे होकर गुजरा। लोगोंने उसे देखकर कहा—‘यह मूर्ख है।’

‘नहीं, मैं राजा हूँ।’ उसने उत्तर दिया। साथ ही अपने तीनों स्वप्न सुनाये। पर इसका उत्तर उन्होंने (नागरिकोंने) यह दिया कि ‘धनिकोंके ऐश्वर्यसे ही दरिद्रोंकी जीविका चलती है। स्वामीके लिये मेहनत करना कड़ुआ चाहे भले ही हो, परन्तु किसी स्वामीका न होना, जिसके लिये परिश्रम किया जा सके, और भी अधिक कष्टप्रद है।’

जब वह गिरजेमें पहुँचा, तब पादरीने एक बार फिर समझानेकी चेष्टा की, पर तभी बहुत तीव्र शोर हुआ। राज्यके कुछ क्रुद्ध दरबारी तलवार लेकर उसे मारनेके लिये भीतर आये। राजाने अपनी प्रार्थना समाप्त की तथा बड़े दुःखके साथ उनकी ओर देखा।

..... और तभी सबने बड़े आश्चर्यके साथ देखा कि खिड़कीसे आनेवाली सूर्यकी किरणोंने उसके चारों ओर एक अत्यन्त अभूतपूर्व लबादा बुन दिया है, जो कि उसके राजकीय लबादेसे कहीं सुन्दर है। हाथवाली मृत लाठीसे अनेक शुभ वर्णके पुष्प विकसित हो पड़े, जो किसी भी मोतीसे अधिक सुन्दर थे। मुकुटसे भी गुलाबकी कलियाँ निकल आयी थीं, जो मणियोंसे भी अधिक सुन्दर थीं। इन्हीं अभूतपूर्व अलंकारोंको पहने वह खड़ा था तथा सभी सभासद् एवं प्रजाजन घुटने टेककर नतमस्तक हो रहे थे उसके चरणोंपर !

जा दिन संत पाहुने आवत

जा दिन संत पाहुने आवत।

तीरथ कोटि सनान करै फल, जैसौ दरसन पावत ॥

नयौ नेह दिन-दिन प्रति उन कै, चरन-कमल चित लावत।

मन-बच-कर्म और नहि जानत, सुमिरत औ सुमिरावत ॥

मिथ्या-बाद-उपाधि-रहित है, बिमल-बिमल जस गावत।

बंधन कर्म कठिन जे पहिले, सोऊ काटि बहावत ॥

संगति रहै साधु की अनुदिन, भव-दुख दूरि नसावत।

सूरदास संगति करु तिन की, जे हरि-सुरति करावत ॥

पढ़ो, समझो और करो

(१)

श्रीबलदाऊजी पानी भर लाये

वैसे तो बरौनी प्रतिदिन प्रातःकाल ही पानी भरने आ जाया करती थी, परंतु आज वह समयपर नहीं आयी। गोपीबाईको आज पानीकी अत्यधिक आवश्यकता थी। कई बार बुलानेपर बरौनी आयी और आते ही साफ-साफ शब्दोंमें कहा—‘देखो बड़ी माँ ! अब मुझसे काम नहीं होगा। आप कोई दूसरा प्रबन्ध कर लें, अब मैं पानी देनेमें लचर हूँ।’

गोपीबाईने विनम्रतासे कहा—‘आज तो पानी भर ही दो, कल जैसा उचित होगा वैसा कर लूँगी। मैंने एक माहसे अन्न नहीं खाया है। आज पुरुषोत्तम-मासव्रत समाप्त हो रहा है। अतएव मुझे भोजन तैयार कर भोग लगाना है। इसलिये पानीकी बहुत जरूरत है।’

बरौनीने इतनी आरजू-मिन्नतके पश्चात् भी साफ-साफ कह दिया—‘मैं न आपका उपवास जानती हूँ न व्रत। मैंने स्पष्ट कह दिया कि मैं अब पानी नहीं भर सकती।’

गोपीबाईने पानी भरनेके लिये लाख प्रयत्न किया, पर बरौनी पानी भरनेको राजी न हुई और नीचा सिर किये चुपचाप वहाँसे चली गयी। गोपीबाईकी हिम्मत न हुई कि उसे रोक सके।

× × ×

गोपीबाई ग्रामकी प्रतिष्ठित महिला थीं। उनका गाँवमें बहुत सम्मान था। वे बम्हनी-निवासी जगताराम श्रीवास्तवके कुलकी बहू थीं। अपने पिता टीकारामकी मृत्युके पहले ही उनके ससुर काशीप्रसाद स्वर्गवासी हो चुके थे, अतः उनकी सास गिरिजाबाई अपने पुत्रके साथ उनके मायके आ गयी थीं। परंतु कालके कठोर हाथोंने उनके प्यारे पुत्रको भी उनसे छीन लिया।

विधवा गोपीबाईकी तीन बच्चियोंकी शादी हो चुकी थी और उनका इकलौता पुत्र ससुरालकी सम्पत्ति मिल जानेके कारण ससुरालमें ही रहता था। वे घरमें अकेली ही थीं। वे भगवद्भक्त होनेके कारण व्रत-उपवास अधिक करती थीं। अधिकमास (पुरुषोत्तममास) व्रत निराहार करनेके कारण वे दुर्बल हो चुकी थीं। उनकी ताकत स्वयं पानी लानेकी नहीं

थी। उस ग्राममें एक ही कुआँ था। वह इतना गहरा था कि उसमेंसे पानी खींच निकालना बहुत कठिन था। जब बरौनीने पानी देना इन्कार कर दिया तो गोपीबाईको बहुत दुःख हुआ, वे भगवान्के पास जाकर रोने लगीं। उन्होंने मनमें ठान लिया कि आज भोजन नहीं बनाऊँगी। भगवान् जब पानीका प्रबन्ध नहीं कर सकते तो खाना बनानेसे क्या लाभ ?

जेठका महीना था। दोपहरी अपने प्रचण्ड वेगसे तप रही थी। चिलचिलाती धूपमें घरसे बाहर निकलना भी कठिन था, फिर कुआँसे पानी भरकर लाना कैसे सम्भव था। अतएव वे दरवाजा बंद कर लेट गयीं। ग्राममें बलदाऊजीका विशाल मन्दिर था। गोपीबाईका बलदाऊजीके प्रति अधिक प्रेम था, वे प्रतिदिन उनके दर्शन किये बिना भोजन नहीं करती थीं। आज वे उनका दर्शन करने भी नहीं गयीं।

× × ×

‘बड़ी माँ ! बड़ी माँ !!’ बाहरसे किसीने आवाज दी। गोपीबाईकी नींद खुल गयी। उन्होंने भीतरसे ही लापरवाहीसे उत्तर दिया—‘कौन है ?’ ‘मैं हूँ श्याम’ बाहर खड़े नवयुवकने उत्तर दिया। गोपीबाईने लेटे-लेटे ही कहा—‘अंदर आओ, किवाड़ खुले पड़े हैं।’

बलभद्रजीके मन्दिरके पुजारीका मझला बेटा श्याम किवाड़ खोलकर अंदर गया। वह अपने हाथमें ताँबेका एक पात्र लिये हुए था। आते ही उसने कहा—‘आपको भूख लग रही है। आप भोजन तैयार कीजिये मैं पानी लाया हूँ।’

गोपीबाईने अनमने-स्वर्मे कहा—‘आज खाना नहीं बनाऊँगी। मैं कल अपने बेटेके पास सीरागाँव चली जाऊँगी। श्रीबलदाऊजीके दर्शन एवं महावीर बजरंगबलीकी सेवाके लोभसे ही मैं यहाँ रह रही हूँ और मेरी यहाँ कोई इज्जत भी तो नहीं। मुझे खाना बनानेके लिये पानी तक नहीं मिल पा रहा है, अब मुझे यहाँ रहनेमें क्या लाभ है।’

श्यामने कहा—‘आज आप इस जलसे भोजन तैयार कीजिये, कल सब प्रबन्ध हो जायगा ?’ गोपीबाईकी दृष्टि बलदाऊजीके ताँबेके लोटेपर पड़ी। वह पानीसे लबालब भरा हुआ था। वे पूजनके उस पात्रको भलीभाँति जानती थीं।

श्यामने पूछा—‘पानी कहाँ रख दूँ बड़ी माँ!’ गोपीबाईने एक बर्तनकी ओर इशारा करते हुए कहा—‘इसीमें रख दो।’ श्यामने उस बर्तनमें पानी भर दिया और बोला—‘तुम्हें मेरी सौगंध है बड़ी माँ! भोजन बना लेना और अब मैं जा रहा हूँ।’ गोपीबाईने कोई उत्तर नहीं दिया। श्यामने पुनः कहा—‘मैं जा रहा हूँ।’ गोपीबाईने लापरवाहीसे कहा—‘चले न जाओ’।

× × ×

श्यामके जाते ही गोपीबाईको ऐसा प्रतीत हुआ जैसे उनसे भूल हो गयी है। ब्राह्मणका बालक दोपहरको पानी लाया और मुझे सौगंध दे गया कि ‘भोजन तैयार कर लेना, पर मैंने कुछ उसे नहीं दिया।’ मुझसे बड़ी भूल हो गयी है।

गोपीबाईने विधिवत् भोजन तैयार किया। भगवान्को भोग लगाया और एक माहके पश्चात् अन्न ग्रहण किया। भोजनोपरान्त उन्होंने सोचा कि आज व्रत-विसर्जनका दिन है। ब्राह्मणके बालकके द्वारा लाया हुआ जल मैंने खर्च किया है, अतएव मेरा यह कर्तव्य है कि मैं मन्दिर जाकर श्यामको कुछ पैसे दे आऊँ? ऐसा विचार करके वे मन्दिर चली गयीं।

मन्दिरमें पहुँचकर उन्होंने भगवान् बलभद्रके दर्शन किये। भगवान् बलभद्रकी प्रसन्नचित्त छबिको निहारकर वे अपनी सुध-बुध खो बैठीं। पुजारीने आकर उन्हें चरणामृत दिया। चरणामृत लेनेके बाद उन्होंने पुजारीसे श्यामको बुला देनेका आग्रह किया।

पुजारीने बड़ी उत्सुकतासे पूछा—‘क्यों श्यामसे क्या काम है?’ गोपीबाईने एक ही साँसमें सारा किस्सा पुजारीको सुना दिया और कहा—‘मैं ब्राह्मणके हाथका पानी बिना कुछ पैसे दिये नहीं पी सकती। अतः आप ये रुपये श्यामको दे दीजियेगा।’

गोपीबाईके शब्दोंको सुनकर पुजारी हक्का-बक्का-सा रह गया। उसने आश्चर्यमिश्रित स्वरमें कहा—‘श्याम एक माहसे अपने मामाके यहाँ गया हुआ है, वह तो यहाँ है ही नहीं। आप क्या कह रही हैं?’

यह सुनते ही गोपीबाई स्तब्ध रह गयीं, मन-ही-मन न जाने क्या सोचने लगीं, वे प्रभुकी लीलाके बारेमें कुछ भी निर्णय न ले सकीं और तुरंत पण्डितजीको प्रणाम करके वे चुपचाप अपने

घर लौट आयीं। आते ही उन्होंने देखा कि जिस बर्तनमें श्यामने पानी भरा था, वह अब भी भरा हुआ है, घड़ेमें भरे जलको उन्होंने अपने मस्तकपर डाला और भगवान्के पास जाकर रोने लगीं तथा कहने लगीं—‘आपने मेरे लिये कष्ट उठाया।’

सारे ग्राममें चर्चा फैल गयी कि आज स्वयं बलदाऊजीने श्यामका रूप बनाकर बड़ी माँको पानी लाकर दिया है। सबके हृदय प्रसन्नतासे पूर्ण हो गये। श्रीबलदाऊजीकी जय-जयकार होने लगी।

—श्रीमधुकान्तजी कपिधवज

(२)

हनुमदाराधनका प्रत्यक्ष फल

यह घटना इसी वर्षके चैत्र नवरात्रकी है। मेरे जीजाजी श्रीमदनलालजी कलकत्तेके एक सम्भ्रान्त नागरिक हैं। वे प्रतिवर्ष नवरात्रमें अपनी पत्नीके साथ अयोध्यामें निवास करते हैं। दिनाङ्क २८ मार्च ९० को कलकत्तेमें उनके पौत्र विवेक, जिसकी अवस्था लगभग १७ वर्ष की है, उसने दिनमें लगभग ११ बजे स्कूलके लिये प्रस्थान किया, परंतु सायंकालतक घर वापस नहीं पहुँचनेपर स्वाभाविक रूपसे माता-पिताको चिन्ता हुई और उसकी खोज की गयी, परंतु तीन दिनोंतक लगातार खोज करनेपर भी कोई पता न लगनेसे चिन्ता बढ़ती गयी। लड़केके दादाजीको तत्काल अयोध्या समाचार दिया गया। वे भी नवरात्रके बीचमें ही यह समाचार सुनकर काशी होते हुए तुरंत कलकत्ता पहुँचे। काशीमें एक सज्जनने लड़केके दादाजी श्रीमदनलालजीको एक अनुभूत अनुष्ठान बताया कि आप कलकत्ता पहुँचकर तत्काल हनुमानचालीसाका १०८ पाठ, दीपक जलाकर विधिपूर्वक श्रीहनुमान्जीकी मूर्तिके समक्ष करें तो तत्काल इसका परिणाम प्राप्त होगा।

श्रीमदनलालजीने कलकत्ता पहुँचकर सबसे पहले पूर्ण श्रद्धावनत होकर अपनी ठाकुरबाड़ीमें श्रीहनुमान्जी महाराजसे आर्द्रचित्त होकर प्रार्थना की तथा उन सज्जनके बताये-अनुसार १०८ बार हनुमानचालीसाका पाठ घृतका दीपक जलाकर करना प्रारम्भ किया। पाठकी संख्या पूर्ण होनेके पूर्व ही अचानक टेलीफोनकी घंटी बजी। लड़केके पिताने टेलीफोन उठाया और टेलीफोनमें अपने लड़केकी आवाज पहचानकर वे आश्चर्यचकित हो गये। अबतक पाँच दिन बीत चुके थे, पर

अपने बच्चेका कोई सुराग न मिलनेके कारण घरके सभी लोग अत्यधिक चिन्तित हो चुके थे। शनैः-शनैः बच्चेके लौटनेकी आशा धूमिल होती जा रही थी, पर हठात् श्रीहनुमंतलालजीकी कृपाका चमत्कार प्रत्यक्ष देखकर वे हर्षोत्फुल्ल हो उठे। लड़केने फोनपर अपने पिताको बताया कि वह टाटानगरसे बोल रहा है और सुरक्षित है। वह बहुत घबराया हुआ था। जिसके यहाँ उसने आश्रय प्राप्त किया था, उस व्यक्तिने अपना पता-ठिकाना इन्हें फोनपर बताया और यह आश्वासन दिया कि आप किसीको भेजकर अपने बच्चेको ले जायँ। तत्काल उस बच्चेको आदमी भेजकर बुलानेकी व्यवस्था की गयी। उसी दिन रात्रिमें जब वह अपने घर पहुँचा तो उसने आप-बीती सब कथा सुनायी। कहा—उस दिन कुछ बदमाशोंने स्कूलसे आते समय उसका अपहरण कर लिया था तथा दो दिनतक तो उसे कलकत्तेमें ही रखा, कुछ यातनाएँ भी दीं, इसके अनन्तर वे

लोग उसे बिहारमें समस्तीपुर ग्राममें ले गये। वहाँ इसी प्रकारसे एक युवती तथा एक अन्य व्यक्ति उनके द्वारा अपहृत कर लाये गये थे। ऐसा लगता था कि अपहरण करना ही उनका धंधा है। इसी बीच भगवान्की कृपासे कुछ क्षण उस बालकको ऐसे मिल गये कि वह उन बदमाशोंके चंगुलसे निकल भागनेमें सफल हो गया तथा किसी ट्रेनसे टाटानगर जा पहुँचा और वहाँ किसी एक सज्जन व्यक्तिको अपनी आप-बीती सुनायी। उसने ही अपने यहाँ उसे आश्रय देकर पूर्ण आश्वासन दिया और उसके खाने-पीनेकी व्यवस्था की तथा कलकत्ते घरवालोंको उसकी सूचना दी। बच्चेके माता-पिता तथा घरके सभी लोग भगवान्की कृपाके साथ-साथ उस व्यक्तिकी दयाकी भी सराहना करने लगे तथा श्रीहनुमान्जी महाराजकी आराधनाका प्रत्यक्ष फल पाकर कृतकृत्य हो गये। (प्रेषक—श्रीविश्वनाथजी भावसिंहका)

मनन करने योग्य तुम कौन हो ?

सोचो, तुम कौन हो ? जिस शरीरको तुम 'मैं' समझते हो और कभी-कभी कहते भी हो—'मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ, मैं बीमार हो गया, मैं स्वस्थ हूँ' आदि, वह शरीर ही क्या तुम हो ? याद करो, लड़कपनमें यह शरीर कैसा था, जवानीमें इसका क्या स्वरूप था और अब बुढ़ापेमें इसका सारा ही रंग-रूप बदल गया। जिसने लड़कपनमें इसको देखा था, वह तो अब इसे पहचान ही नहीं सकता। कहाँ वह नन्हें-नन्हें कोमल हाथ-पैर, मोहन मुखड़ा, दूध-से दाँत, भौरोंके रंग-से काले घुँघराले बाल और कहाँ आजका यह कुबड़ा शरीर, झुर्रियाँ पड़ी हुई चमड़ी, सफेद केश, चिपका मुँह, डरावनी सूत। वह शरीर तो मर ही गया, उसका एक भी निशान अब नहीं है, ऐसे शरीर ही क्या तुम हो ? नहीं, तुम यह नहीं हो, तुम तो वह हो जो इस शरीरकी बाल, युवा और वृद्ध तीनों अवस्थाओंको समानरूपसे जानता है। शरीर बदल गया, परंतु तुम नहीं बदले। शरीर जड़ है, तुम चेतन हो, शरीर बढ़ता है, तुम नहीं बढ़ते, शरीर क्षय होता है, तुम जैसे-के-तैसे हो, शरीर पैदा होता है और नष्ट हो जाता है, तुम सदा ही रहते हो। फिर तुम क्यों अपनेको शरीर समझते हो और क्यों शरीरके

मानापमान, सुख-दुःख और जन्म-मरणमें अपना अपमान, सुख-दुःख और जन्म-मरण मानते हो ? क्यों सचमुच यह तुम्हारी भूल है न ? अच्छा बताओ, क्या तुम 'नाम' हो ? नामकी पुकार सुनते ही सोतेमें बोल उठते हो, नामको कोई गाली देता है तो उसे सुनकर मारे शोकके रो उठते हो, मारे क्रोधके जलने लगते हो। परंतु सोचो तो सही, क्या वस्तुतः तुम नाम हो ? जब तुम माँके गर्भमें थे, उस समय बताओ तुम्हारा क्या नाम था ? जब तुम जन्मे उस समय क्या तुम्हारा यह नाम था ? जिस नामको आज तुम अपना स्वरूप समझते हो ? नहीं था ! क्या मरनेके बाद जहाँ जाओगे वहाँ यही नाम रहेगा ? नहीं ! फिर क्यों यह समझते हो कि मैं 'रामप्रसाद' हूँ ? यह तो रखा हुआ कल्पित नाम है जो अनित्य है, चाहे जब बदला जा सकता है। फिर इस नामकी निन्दा-स्तुतिमें तुम क्यों अपनी निन्दा-स्तुति समझते हो और क्यों दुःख-सुखका अनुभव करते हो ? यह भी तुम्हारा भ्रम ही है न ?

अच्छा, क्या तुम आँख, कान, नाक, जीभ, चमड़ी, पैर आदि इन्द्रियोंमेंसे अपनेको कोई मानते हो ? यदि ऐसा है तो बताओ आँखें फूट जानेसे, नाक कट जानेसे, कान बहरे हो

जानेसे या हाथ-पैर टूट जानेसे क्या तुम मर जाते हो ? नहीं, तो फिर तुम इन्द्रियाँ कैसे हुए ? तुम तो इनको, इनकी चेष्टाओंको और इनकी अच्छी-बुरी हालतको देखने और जाननेवाले हो, फिर इन्द्रियको अपना स्वरूप मानना तुम्हारी गलती नहीं तो और क्या है ?

ठीक, तुम अपनेको मन बतलाओगे ! पर जरा सोचकर कहो, मनमें जब नाना प्रकारके विचार उठते हैं, तब तुम उनको जानते हो या नहीं ? नहीं जानते, तो कहते कैसे हो कि 'मेरे मनमें अभी यह विचार आया था', और जानते हो तो यह निश्चय समझो कि जाननेवाला उस जानी हुई वस्तुसे अलग होता है। सुषुप्तिके समय मनका पता नहीं रहता, परंतु तुम तो वहाँ रहते ही हो, क्योंकि तुम जागकर कहते हो कि 'मैं सुखसे सोया था।' मन जहाँ-तहाँ भटकता है, तुम अपनी जगह अचल बैठे सदा उसकी हरेक चालको देखा करते हो, उसकी प्रत्येक बातको जानते हो, इसलिये तुम मन नहीं हो, तुम तो उसके द्रष्टा हो—फिर अपनेको मन मानना तुम्हारी भ्रान्ति ही तो है !

तुम बुद्धि भी नहीं हो, मनकी चालकी तरह बुद्धिकी भी प्रत्येक स्थितिको, उसके हरेक कार्यको और विकारको, उसकी नीचता-उच्चताको, अपवित्रता-पवित्रताको और उसके अच्छे-बुरे निर्णयको तुम जानते हो। उसमें ये सब बातें आती-जाती, बढ़ती-घटती रहती हैं, पर तुम सदा उसकी सारी हरकतोंको देखा ही करते हो। इसीसे कहा करते हो—'मेरी बुद्धि उस समय बिगड़ गयी थी। सत्संगके प्रभावसे मेरी बुद्धिकी मलिनता जाती रही।' तब फिर तुम अपनेको बुद्धिका द्रष्टा न मानकर बुद्धि ही कैसे मानते हो ? यह तुम्हारा भ्रम ही है !

तुम 'अहंकार' भी नहीं हो—आत्मामें स्थित होकर तुम यदि अपनेको 'मैं' कहते तो तब तो ठीक था, परंतु तुम तो देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदिके समूहमें 'मैं'-बुद्धि करके अहंकार करते हो, वस्तुतः इस अहंकारके भी तुम द्रष्टा ही हो। इसीसे कहा करते हो—'मैंने भूलसे अहंकारके वश ऐसा कह दिया था।'।

इसी प्रकार तुम प्राण भी नहीं हो, प्राण तुम्हारे आश्रित है। तुम प्राणोंके आधार हो।

सौ०भा० २—

तुम शुद्ध, बुद्ध, नित्य, चेतन, आनन्दमय आत्मा हो, देहके नाशमें तुम्हारा नाश नहीं होता और देहके बननेमें तुम नये बनते नहीं। नामका महत्त्व और हीनत्व तुम्हें महान् और हीन नहीं बना सकता। तुम तो सदा निर्विकार हो ! तुम्हें न कोई गाली दे सकता है, न तुम्हारा अपमान कर सकता है, न तुम्हें मार सकता है और न तुम्हारा कुछ भी अनिष्ट कर सकता है। तुम अपने स्व-रूपमें सदा स्थिर अचल प्रतिष्ठित हो। इस बातको समझो और जगत्के द्वन्द्वोंसे अविचल रहो। यह स्व-रूपस्थिति ही तुम्हारी असली स्थिति है। इसको पा लेनेमें ही, पा लेना क्या, अपनी इस नित्य स्व-रूपस्थितिको जान लेनेमें ही तुम्हारी सफलता है। इसे जान लोगे तो तुम महात्मा बन जाओगे। नाम, रूप और इन्द्रिय, मन आदिको आत्मा मानना ही अधमत्व है और आत्माको अपने महत्-स्वरूपमें अविचल देखना ही महात्मापन है।

यह महात्मापन केवल ऊपर लिखी पंक्तियोंके लिखने-पढ़ने या कहना-सुनना जान लेनेसे ही नहीं प्राप्त होता। असली जानना तो वह है जब शरीर, मन आदिसे अहंता-ममता सर्वथा हट जाय और सचमुच ही इनके हानि-लाभमें आत्माको कुछ भी हानि-लाभका अनुभव न हो और उसकी स्व-रूपस्थिति नित्य अच्युत रहे।

हमलोग कहना सीख लेते हैं और लोगोंको सिखाने लगते हैं, परंतु स्वयं वैसा करना, वैसा बनना नहीं सीखते। बने हुए कहलाना चाहते हैं, महात्मा बनकर पुजवाना चाहते हैं, परंतु वस्तुतः महात्मापन स्वीकार नहीं करना चाहते। इसीसे किसी मतविशेषके आग्रही बनकर कोरे उपदेशक रह जाते हैं। सुख-दुःखकी लहरोंमें बहनेवाले, अशान्तचित्त, मायामोहित साधनहीन प्राणी-मात्र रह जाते हैं। जिस समय शरीर, मन, वाणीसे सर्वथा पृथक् आत्माका स्वरूपनिर्देश करते हुए उपदेश करते हैं, उसी समय गहराईसे देखनेपर पता चलता है, हमारी स्थिति शरीर-मनमें ही है, हम उन्हींके सुख-दुःख—मानापमानको अपना सुख-दुःख, मानापमान समझकर हर्ष-शोककी मानसिक तरंगोंमें डूबते-उतराते रहते हैं ! यह दशा शोचनीय है। इससे अपनेको बचाओ, इससे निकलकर ऊपर उठो, बस, यही पुरुषार्थ है, यही साधन है, इसीमें लगे रहो ! सच्चे साधक बनो—कहनेमात्रके सिद्ध महात्मा नहीं !

श्रीराम-जन्मभूमि

भगवान् श्रीराम भारतवासियोंके आदर्श हैं। श्रीरामको परब्रह्मका अवतार माना गया है, जो मर्यादाओंकी रक्षाके लिये अवतरित हुए। सदाचार-संस्थापन और धर्म-संरक्षण ही उनका मुख्य उद्देश्य था। वास्तवमें श्रीरामका जीवन ही भारतकी संस्कृति है। इसी कारण भगवान् श्रीरामकी कथाका प्रचार-प्रसार और विस्तार भारतीय जनमानसमें सर्वाधिकरूपसे होता रहा है। वेद, पुराण और इतिहासमें भगवान् श्रीरामकी कथाओं और लीलाओंका वर्णन सर्वत्र व्याप्त है। उनके जीवन-चरित्रकी घटनाएँ, लीलास्थल, लक्षण और उनके चिह्न जिनका वर्णन शास्त्रोंमें मिलता है, वे आज भी उपलब्ध हैं। इसीलिये भगवान् श्रीरामका अवतार, उनकी लीलाएँ और उनकी कथाएँ कपोल-कल्पित नहीं, बल्कि वास्तविक हैं और भारतीय जनमानसकी सर्वाधिक श्रद्धाके प्रतीक हैं।

अभी कुछ वर्षों पूर्वतक यह देश सदियोंसे गुलामीकी जंजीरोंसे बँधा था। यह संयोगकी बात थी कि पहले तो यहाँ मुसलमानोंका आधिपत्य था, बादमें अंग्रेजोंका शासन हुआ। किसी भी देशको अधिक दिनोंतक गुलाम बनाकर रखनेके लिये उसकी संस्कृति और धर्मको मिटाना आवश्यक होता था, इसका प्रयास अंग्रेजोंने भी यहाँ किया। भारतीय संस्कृतिके आधारभूत ग्रन्थ 'वेद' जिन्हें हम अनादि, अपौरुषेय और साक्षात् भगवद्वाणीके रूपमें स्वीकार करते हैं, मैक्समूलर और मेकडोनल-जैसे अंग्रेज विद्वानोंने अपना सम्पूर्ण जीवन यह सिद्ध करनेमें ही बिताया कि वेद मनुष्यद्वारा निर्मित हैं और ये अमुक समयमें बनाये गये हैं। उनका लक्ष्य था कि वेदोंमें जो हमारी अटूट श्रद्धा है, हम इसे परमेश्वरकी वाणी मानते हैं, उसको क्षति पहुँचे, पर यह कार्य इतना सरल नहीं था। इसी प्रकार कुछ शासकोंने पूर्वकालमें अपनी संकीर्ण विचारधाराके अन्तर्गत हमारे प्रमुख आध्यात्मिक स्थल, उपासना-गृह, जो इस देशकी संस्कृतिके धरोहर हैं और यहाँकी करोड़ों-करोड़ जनताकी उपासनाका केन्द्र-बिन्दु हैं, उन्हें नष्ट कर उसका स्वरूप परिवर्तित कर लिया जो वास्तवमें परस्पर मतभेद, द्वेष और वैमनस्यका बीज बन गया है। जबतक यह देश परतन्त्रताकी बेड़ीमें कसा था, तबतक इसका कोई निराकरण भी नहीं था। पर जब हम स्वतन्त्र हुए तो उन दिनों इस देशके

कर्णधार और अपने देशके नेता सरदार बल्लभभाई पटेलका इस ओर ध्यान गया और उन्होंने यह आवश्यक समझा कि देशकी जनताका मनोबल उठानेके लिये और यहाँकी संस्कृतिको सुरक्षित रखनेके लिये ऐसे प्रश्नोंका समाधान यथाशीघ्र होना चाहिये। यही कारण था कि तत्काल उन्होंने सर्वप्रथम सोमनाथ-मन्दिर, जो पूर्वकालमें विदेशी आक्रमणोंद्वारा विध्वस्त कर दिया गया था, उसके पुनरुद्धारकी घोषणा की। यथाशीघ्र उसका निर्माण-कार्य पूरा होनेपर भारतके प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसादजीने इसका उद्घाटन किया। दुर्भाग्यवश सरदार पटेलके निधनके बाद देशके नेताओंने इस महत्वपूर्ण मुद्देपर ध्यान नहीं दिया और वे अपने तात्कालिक राजनीतिक स्वार्थकी सिद्धिमें लगे रहे। वास्तवमें श्रीराम-जन्मभूमिके प्रश्नको राजनीतिक रूप नहीं दिया जाना चाहिये। यह शुद्ध आध्यात्मिक एवं सम्पूर्ण राष्ट्रके गौरवका प्रश्न है।

श्रीराम भारतीय संस्कृतिके प्रतीक हैं और भारतवासियोंके जीवन हैं। एक बार किसीने ब्रह्मलीन स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराजसे कहा कि 'भारतीय संस्कृति और सनातन धर्मके अनेक ग्रन्थ हैं। कितने तो वेद हैं, उपनिषद् हैं, पुराण, उपपुराण और स्मृतियाँ हैं, इन सबको एक साथ कैसे पढ़ा जा सकता है? कोई एक ग्रन्थ ऐसा हो जिसे पढ़नेपर पूरी भारतीय संस्कृतिका दिग्दर्शन हो जाय।' इसपर श्रीस्वामीजीने उत्तर दिया कि 'किसी एक ग्रन्थमें भारतीय संस्कृतिका दर्शन करना हो तो भगवान् रामकी कथा 'श्रीरामचरितमानस' पढ़ लो। इस एक पुस्तकसे भारतकी संस्कृति समझमें आ जायगी और इसका ज्ञान भी हो जायगा।' यह इस ग्रन्थकी महिमा नहीं बल्कि भगवान् श्रीरामके चरित्रकी महिमा है। यही कारण है कि राष्ट्रपिता महात्मा गाँधीने स्वराज्यके बाद इस देशमें रामराज्यके स्थापनाकी कल्पना की थी। यह बात सर्वविदित है।

'श्रीराम-जन्मभूमि' वास्तवमें कोई मन्दिर-मसजिदका विवाद नहीं है। कारण, मन्दिर तो कहीं भी बनाया जा सकता है, इसी तरह मसजिद भी कहीं रखी जा सकती है, परंतु जन्मभूमिका स्थान बदला नहीं जा सकता। वह भी ऐसी जन्मभूमि जो साक्षात् परब्रह्म परमात्माके अवतारकी भूमि हो।

भगवान् श्रीराम पूर्णब्रह्म साक्षात् परमात्माके रूपमें अपनी सम्पूर्ण कलाओंके साथ इस पवित्र भूमिपर अवतरित हुए थे। यह जन्मभूमि करोड़ों-करोड़ देशवासियोंका दिव्य स्मृति-स्थल है, जो अति पवित्र है। जहाँ थोड़ी साधना और उपासना करनेपर भी सिद्धि प्राप्त हो जाती है और जिसके दर्शनमात्रसे अमोघ फलकी प्राप्ति होती है। यहाँतक कि जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्ति भी मिलती है। यह बात मनगढ़ंत या काल्पनिक नहीं, बल्कि शास्त्रकी बात है। पुराणोंमें इसके संदर्भ मिलते हैं। 'भगवान् श्रीरामकी जन्मभूमि यही है', यह भी इन पुराणोंके वचनोंसे सिद्ध होता है। स्कन्दपुराण (वैष्णवखण्ड, अयोध्या-माहात्म्य)के कुछ वचन हम यहाँ उद्धृत करते हैं, जिनसे स्वतः सब स्पष्ट हो जायगा—

तस्मात् स्थानादेशाने रामजन्म प्रवर्तते।

जन्मस्थानमिदं प्रोक्तं मोक्षादिफलसाधनम् ॥

(विघ्नेश्वरके) स्थानसे ईशानकोणमें राम-जन्मस्थान है। मोक्ष आदि सभी फलोंके देनेवाले इस स्थानको राम-जन्मस्थान कहा गया है।

विघ्नेश्वरात् पूर्वभागे वासिष्ठादुत्तरे तथा।

लोमशात् पश्चिमे भागे जन्मस्थानं ततः स्मृतम् ॥

विघ्नेश्वरके पूर्वमें तथा वसिष्ठ-स्थानसे उत्तरमें, लोमश-स्थानसे पश्चिम दिशामें राम-जन्मस्थान है।

यददृष्ट्वा च मनुष्यस्य गर्भवासजयो भवेत्।

विना दानेन तपसा विना तीर्थैर्विना मरुतैः ॥

रामजन्मभूमिके दर्शनमात्रसे बिना दानके, बिना तपके, बिना तीर्थयात्राके तथा बिना यज्ञ किये ही मुक्ति हो जाती है तथा फिर गर्भमें नहीं आना पड़ता।

नवमीदिवसे प्राप्ते व्रतधारी हि मानवः।

स्नानदानप्रभावेण मुच्यते जन्मबन्धनात् ॥

रामनवमीके दिन रामनवमी-व्रत करनेवाला पुरुष स्नान-दान और तपके प्रभावसे जन्म-मरणके बन्धनसे छुटकारा पा जाता है।

कपिलागोसहस्राणि यो ददाति दिने दिने।

तत्फलं समवाप्नोति जन्मभूमेः प्रदर्शनात् ॥

प्रतिदिन हजारों कपिला गौके दानसे जो फल मिलता है, वही फल जन्मभूमिके दर्शनमात्रसे मिल जाता है।

आश्रमे वसतां पुंसां तापसानां च यत्फलम्।

राजसूयसहस्राणि प्रतिवर्षाग्निहोत्रतः ॥

आश्रममें निवास करनेवाले तपस्वीजनों, यावज्जीवन अग्निहोत्र करनेवालों तथा सहस्रों राजसूय-यज्ञ करनेवालोंको जो फल मिलता है, वही फल जन्मभूमिके दर्शनमात्रसे मिल जाता है।

नियमस्थं नरं दृष्ट्वा जन्मस्थाने विशेषतः।

मातापित्रोर्गुरुणां च भक्तिमुद्रहतां सताम् ॥

तत्फलं समवाप्नोति जन्मभूमेः प्रदर्शनात् ॥

माता-पिता और गुरुकी सदा भक्ति करनेवालों तथा ध्यानावस्थित या समाधिस्थ पुरुषोंके दर्शनसे जो फल मिलता है, वही फल जन्मभूमिके दर्शनमात्रसे मिल जाता है।

उपर्युक्त वचनोंसे तथा जन्मभूमिके प्रत्यक्ष दर्शनसे यह बात सिद्ध हो जाती है कि भगवान् श्रीरामकी जन्मभूमि यही है और इसकी अमित महिमा है।

जहाँतक साम्प्रदायिक सद्भावकी बात है*, कोई भी आस्तिक हिन्दू आस्तिक मुसलमानको हृदयसे आदर देता है और इसी तरह कोई भी आस्तिक मुसलमान आस्तिक हिन्दूका भी आदर करता है। सबको अपने धर्मके अनुसार चलनेकी स्वतन्त्रता है। दो भाई एक साथ तभी रह सकते हैं, जब एक दूसरेके प्रति उनमें त्यागकी भावना हो और परस्पर समझदारी रहे। धर्म-निरपेक्षताके नामपर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बातकी उपेक्षा कर देना और उसे टाल देना कोई बुद्धिमानकी बात नहीं कही जा सकती। यह तो एक प्रकारका राजनीतिक स्वार्थ है और देशकी सेवामें एक व्याघात है।

'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' भगवान् श्रीरामकी यह उक्ति कितनी मार्मिक है। 'जननी और जन्मभूमि स्वर्गसे भी श्रेष्ठ है।' शास्त्रोंमें कहा गया है कि स्वर्गमें सर्वाधिक सुखभोगकी प्राप्ति होती है, जो अपने शुभकर्मोंके अनुसार

* यह पूर्णरूपसे तभी सम्भव है जब श्रीराम-जन्म भूमिपर बाबरद्वारा निर्मित मसजिदको हटाकर सम्मानके साथ किसी अन्य स्थानपर स्थापित किया जाय और भगवान् श्रीरामकी जन्मभूमिका उनकी स्मृति-चिह्नके रूपमें पुनरुद्धार किया जाय जिससे इस अप्रिय प्रकरणको शीघ्र भुलाया जा सके।

प्राणीको मिलता है, परंतु जन्मभूमि और जन्म देनेवाली जननीका सांनिध्य प्राप्त होनेपर स्वर्गका यह सर्वोत्कृष्ट सुख भी तुच्छ हो जाता है। कहते हैं कि भगवान्की तरह भगवल्लोक और भगवद्धाम भी नित्य शाश्वत और दिव्यानन्दसे युक्त है। इसलिये भक्तगण भगवद्धाममें ही निरन्तर निवास करना चाहते हैं, अन्यत्र कहीं रहना पसंद नहीं करते।

‘श्रीरामचरितमानस’में स्वयं भगवान् श्रीराम जन्मभूमिकी महिमाका वर्णन करते हुए कहते हैं—

जद्यपि सब बैकुण्ठ बखाना। वेद पुरान बिदित जगु जाना ॥

अवधपुरी सम प्रिय नहि सोऊ। यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ ॥
जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि। उत्तर दिसि बह सरजू पावनि ॥
जा मजन ते बिनहि प्रयासा। मम समीप नर पावहि बासा ॥
अति प्रिय मोहि इहाँ के बासी। मम धामदा पुरी सुखरासी ॥
जन्मभूमि ‘श्रीराम’ को अति प्रिय है और ‘श्रीराम’ हमारे आराध्य हैं। अतः हम सभी भारतवासियोंका और इस देशके कर्णधारोंका यह परम कर्तव्य है कि इस प्राचीन मूल स्थानको सुरक्षित कर भारतीय जनमानसकी भावनाओंका समादर करें।

—राधेश्याम खेमका

श्रीभगवन्नाम-जपकी शुभ सूचना

(इस जपकी अवधि कार्तिक पूर्णिमा, विक्रम-संवत् २०४६ से चैत्र पूर्णिमा, विक्रम-संवत् २०४७ तक रही है।)

ते सभाग्या मनुष्येषु कृतार्था नृप निश्चितम्।

स्मरन्ति ये स्मारयन्ति हरेर्नाम कलौ युगे ॥

‘राजन् ! मनुष्योंमें वे लोग भाग्यवान् हैं तथा निश्चय ही कृतार्थ हो चुके हैं, जो इस कलियुगमें स्वयं श्रीहरिका नाम-स्मरण करते और दूसरोंसे स्मरण करवाते हैं।’

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

—इस वर्ष भी इस षोडश नाम-महामन्त्रका जप पूर्ववत् पर्याप्त संख्यामें हुआ है। विवरण इस प्रकार है—

(क) मन्त्र-संख्या २८,४०,२५,००० (अट्ठाईस करोड़ चालीस लाख पच्चीस हजार)।

(ख) नाम-संख्या ४,५६,४४,००,००० (चार अरब छप्पन करोड़ चौवालीस लाख)।

(ग) षोडश नाम-मन्त्रके अतिरिक्त अन्य मन्त्रोंका भी जप हुआ है।

(घ) बालक, युवक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, गरीब-अमीर, अपढ़ एवं विद्वान्—सभी तरहके लोगोंने उत्साहसे जपमें योग दिया है। भारतका शायद ही कोई ऐसा प्रदेश बचा हो, जहाँ जप न हुआ हो। भारतके अतिरिक्त बाहर नेपाल आदिसे भी जप होनेकी सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं।

स्थानोंके नाम—

अंजनगाँव, अंदेवली, अंनदपुर, अंबाड़ा, अंबालासिटी,

अकबरपुर, अकलकतरा, अकोड़ा, अकलकोट, अगौस, अघोड़ा, अचलपुर, अजनेरा, अजबपुरा, अजमेर, अजितगढ़, अथाईखेड़ा, अधीया, अधोया, अनधौरा, अनसारी, अनुग्रहनगर, अपरबाजार, अपानदाँ, अमगाँवाँ, अमतगाँव, अमनपुर, अमरगढ़, अमरपुर, अमरावती, अमलोह, अमीनगरसराय, अमीरनगरसराय, अमृतसर, अमृतपुर, अयोध्या, अरई, अरड़का, अरनिया चौहान, अरसू, अलिराजपुर, अलीगंज, अलीगढ़, अल्लागंज, अशोकपुर, असदपुर, असनावर, असलोदा, अहमदनगर, अहल्यापुर, अहेर, अहेरी, आंकिन आंधी, आंबले, आगरा, आनन्दगाँव, आबूनगर, आरंग, आरा, आलमबाग, आसपुरा, आसरांनगर, इंगोहटा, इंडलोद, इंदिरानगर, इंद्राना, इंदौर, इचलकरंजी, इदरीसपुर, इब्राहीमाबाद, इमिलिया, इरोद, इलाहाबाद, इस्माइलगंज, इस्लामपुर, ईश्वरपुरसाई, उकाचा, उच्चैन, उज्जैन, उटीला, उत्साहनगर, उदनाबाद, उदयपुर, उदयाखेड़ी, उधमपुर, उनीदा, उपहरटी, उपाध्यायटीला, उमरियाँ, उमरेड, उम्दा, उरई, उल्हासनगर, ऊन, ऊना, ऋषभदेव, ऋषिकेश, एकइल, एटा, ओकातिया, ओझाछपरा, ओढनपुर, ओड़ेकेरा, ओमनगरी, औढनपुर, कंजर, कंठीलो, कंवाली, कन्नावा, कन्नौज, कन्हौली, कच्छ, कजाड़ी, कटड़ाचढतसिंह, कटनी, कटरा, कटरापुरवा, कटिहार, कठवत, कठौता, कडूर, कदमकुआँ, कनकापुर, कनासिया, कपासन, कमताना, कमलानगर,

करंगामाल, करणपुरककेन, करवाड़, करसोंग, कराड़, करीमनगर, करई, करवाडांगा, कर्णकुटी, कर्णगढ़, कर्णपुर, कर्वी, करेली, करैहापारा, करौली, कलकत्ता, कलक्टरगंज, कल्याणपुर, कल्याणपुरी, कल्याणबीघा, कविलपुर, कसहा, कसहापूर्व, कस्तूरबानगर, कहारबाड़ी, कांगपोकपी, कांटावागी, कान्डा, काँधला, काँवट, कांसड़ी, कादरगंज, कादीचक (बाढ़), कानपुर, कारंजा, कालकुण्ड, कालन्त्री, कालवसिया, कालिमाढी, कालीबाग, काशीमठ, किरावली, किलोदा, किशनगंज, किशोरगंज, कीताडीह, कीरीबूर, कुंजपुरा, कुंडल, कुंडवाचैनपुर, कुँवरपुर, कुचामन, कुटिलीया, कुमारधुर्वी, कुलशेखरम, कुसमरा, कुसहाँ, कूचाघासीराम, कूचापरमेश्वरीदास, केंदुआ, केउटी, केकड़ी, केडलगंज, केदारनगर, केरपानी, केवलारी, केशवपुरम्, कैथल, कोकर, कोचीन, कोटद्वार, कोटरी, कोडला, कोटा, कोठी, कोनाग, कोबिल, कोमाखान, कोल्हापुर, कोहीर, कौलिया, कृष्णनगर, खंडवा, खंभात, खगडिया, खजवा, खजुरीरुण्डा, खजुहा, खदीमा, खड्गपुर, खडौठ, खमगाँव, खरकड़ी कलां, खरगोन, खरदानेकला, खरसिया, खरहरी, खरेला, खलारी, खलीलाबाद, खाम, खार, खिरनी, खिरियाबाँट, खींवरसर, खूंटपला, खुरहानमिलिक, खुरुसलेंगा, खेड़ापतिनगर, खेड़ीराम, खतराजपुर, खेतोलाई, खेरोट, खैराली, खोरीडीह, खौड़, गंगापुर, गंगापुरसिटी, गंगालूर, गंगावती, गडैरामा, गढ़बसई, गढ़मोरा, गढ़ारोड, गणेशपुरा, गणेशबाजार, गनेड़ी, गरनियाँ, गरोट, गल्लाटोला, ग्वाड़, ग्वालियर, गांगगोधन, गाँधीनगर, गाजीपुरा, गार्डेनरिच रोड, गिरिजास्थान, गिरिडीड, गिलकेरा, गीतानगर, गुजरा, गुठिना, गुडगुर्की, गुडेवल्लूर, गुढ़ा, गुड़गावाँ, गुना, गुर्भामारकुण्डी, गुरसराय, गुराडियाँ, जोगा, गुरान, गुरुग्राम, गुलजारपुर, गुलबर्गा, गुलबार, गुलबारकोठार, गुलाबपुरा, गैसडीबाजार, गोड़हिया, गोड़हिया नं० १, गोनैन, गोपालगढ़, गोरखपुर, गोरखप्रासी, गोलाबाजार, गोविन्दगढ़, गोविन्दपुरी, गोहनारोड, गौडाला, गौहाटी, घनश्यामपुर, घरौंदा, घरौन, घाटाशिला, घाटासेर, घोटा, घौंघोर, चंडरकी, चंडीगढ़, चंडेश्वर, चंदला, चंदा, चंदेरी, चंदौसी, चंद्रनगरकामट, चंद्रपुर, चंद्रहटी, चम्पावत, चक, चकगौरापट्टी, चक्रियारोड, चनवथ, चमाला, चरौदा,

चसगवाँ, चहली, चाँडिल, चाँदई, चाँदपुरकला, चाँदवावडी, चापाखोवा, चाम्बी, चालिसगाँव, चावडिया, चिंचोली, चित्तपुर, चित्तौड़गढ़, चित्रगुप्तनगर, चिन्हारा, चिरवारी, चिराँवडा, चिराँवद, चिलकहर, चिलमिल, चूड़ी अजीतगढ़, चूरु, चैनपुर, चौपड़ा, चौपारन, चौबेका परसियाँ, चौरई, छकना, छत्रपुरा, छपरा, छापड़ा, छावनी, छिंदवाड़ा, छिनका, छुरा, जंगलोह, जंबू, जगतपुर, जगदीशपुर, जगनेर, जगनेवा, जगमनपुर, जगूपुरा, जनकपुरी, जबरारसर, जबलपुर, जबेरा, जमनापार, जमलापुर-ध्यान, जमशेदपुर, जमानियाँ, जमुआँ, जमुनानगर, जयनगर, जयपुर, जरहाडीह, जलवेदा, जलेश्वर, जहाँगीराबाद, जहाजपुर, जारवल, जाजोता, जाजोद, जामजोधपुर, जामूगुरी, जालंधर, जालंधर छावनी, जालना, जालोर, जालौरियाका वास, जुकल, जुनामोढा, जेवरा, जैतपुर, जोगिपारा, जोधपुर, जोबनी, जोरातराईपर्वत, जोरावरडीह, जोशीपाड़ा, जौनपुर, जौरा, ज्यूनियाँ, ज्यूलीकोट, झड़गाँव, झाँसी, झाला, झींली, झीकेपानी, झुगरी, झुमरीतलैया, झूमराखंड, झोंकर, झोंडगे, टंगिया, टनकपुर, टपरिया, टहरौली, टिगरिया, टूड़ावेह, टेहटा, टैगोरपार्क, टोलाशिवनराय, ठाठीपुर, डगरहा, डड़वाखुर्द, डबरेड़ा, डरी, डांगावास, डाकपत्थर, डाकाचाका, डाबलाकला, डालीगंज, डाह, डिटीगंज, डिब्रूगढ़, डिभियागर्भे, डूडराही, डुमरवार, डुमाईगढ़, डूंगरपुर, डेहरी, ढकियातिवारी, ढालपुर, ढोसर, तबड़ा, तमकुड़ा, तलाड़ा, ताजपुर, तारानगर, तालबेहट, तालीकोटि, ताहाचल (नेपाल), तिकुनिया, तिकुनियाखीरी, तितरोद, तिरुनेलवेली, तिलकनगर, तीखमपुर, तीतरिया, तुनि, तुसरा, तेलियासर, तेलहारा, तोंडापुर, तोरनी, थडौली, थतिया, थाणे, थिरौला, थोई, दच्छन, दमाडिया, दर्ी, दलेगा, दहेन्डा, दादपुर, दादर, दादरी, दामोदरनगर, दारिमाधव, दालमीसैण, दापोरी, दिदावली, दिल्ली, दिलोखरा, दीवाननगर, दुर्गा, दुर्गापुर, दुलावनी, देअरालीमसहार, देखेकेरा, देव, देवकली, देवखेरा, देवखोह, देवगढ़, देवजरा, देवढी, देवनगर, देवप्रयाग, देवमई, देवरिया, देवरी, देवरीनाहर मऊ, देवरीरानीपुर, देवीपुरा, देशभटली, देहरादून, देहली, दोनपाह, दोहात, दोहाहांगडी, दौलतगंज, दौसा, द्वारिकापुरी, धनगाँवा, धनबाद, धनपुर, धनाती, धरमपेठ, धरहरा, धिसानामी,

धीरदेसर, धीरदेसपुरोहितान, धेपुरा, धोबीवराड, धौलपुर, नई अलीपुर, नई दिल्ली, नगलाकंचन, नगलामुर्ली, नजफगढ़, ननौरा, नयागढिया, नयागाँव, नरगोड़ा, नरनी, नरपेटारोड, नरवर, नरसिंहगढ़, नरसिंहपुर, नरहम, नरही, नरेला, नल्लाजर्ला, नल्लरेज्जेरलर, नवगछिया, नवनीतनगर, नवरंगपुर, नवरगाँव, नवलगढ़, नवसारी, नवादा, नवाँनगर, नांदूरा, नांदेड, नागचला, नागपुर, नाचनी, नाथद्वारा, नाथेड, नापासर, नायला, नारनौल, नारायणनगर, नारेहड़ा, नावडीह, नावला, नावलीवृन्दावन, नाहन, नाहरगंवाली, निटरी, निभौर, निरपुड़ा, निरमण्ड, निवाई, निवादा, नीम्बूचौड, नेपालगंज, नेपियर-टाउन, नेवढी, नेहरा, नेहरूनगर, नैनोद, नैनीताल, नैमिषारण्य, नोरुड़ा, नौगवाचकडिया, नौताना, नौरोजीनगर, न्यूकिशोरगंज, न्हाती, पंचवटी, पंचेवा, पंजागुटरा, पंजेरी, पंजाखरा, पंडरीखुर्द, पंडरीतराई, पंडरीबुजुर्ग, पंडारा, पंडितपुर, पंतनगर, पकरहट, पचरुखिया, पचौरी, पचौरीगहमर, पजावा, पटना, पटनीबाजार, पटेलनगर, पटोरी, पटोरीबाजार, पटुलकी, पटौर, पद्मा, पनैला, परवाणू, परसरमा, परसा, परसिया, परासीखुर्द, पलवल, पलसी, पलियाकलाँ, पसगवाँ, प० डोरी, पहाड़गंज, पहुँवा, पांगरी, पाँचलीखुर्द, पांडुकेश्वर, पांडेयटोला, पाटवा, पाटलिपुत्र, पानापुर, पानीगाँव, पारु, पालकोट, पालपा, पालम, पालवी, पाली, पालीरोड, पाले, पितीवाड़ा, पिथौरागढ़, पिपलौदा, पिलकिछा, पिलखुवा, पीताम्बरपुरा, पीपरपाँटी, पीपरीउमरन, पीपरीगहरवार, पीपरोली, पीपलाज, पीपली आचार्यान्, पीपीगंज, पीरवा, पीलीवंगाली, पुंडरा, पुणरु, पुनहा, पुनहाना, पुरवालियान, पुरामटोला, पुरी, पूनसीसर, पूरनियाँ, पेशोक, पैंची, पैकिन, पैठत, पैनियाँहिम्मत, पोखरैड़ा, पोडी, प्रतापगढ़, प्रतापनगर, प्रह्लादपुरी, प्रीतमपुरी, प्रेमधामकैल, प्रेमपुरा, फरदहा, फरीदाबाद, फलोदी, फागी, फिरोजाबाद, फीलखाना, फूलपुररामा, बकवाँ, बकवाबुजुर्ग, बगरुछ बाजार, बगरू, बगही, बछामढी, बड़गाँव, बड़गाँवरोड, बड़वानी, बड़ाजलगाँ, बड़ामहादेव, बड़ैरा, बड़ैत, बदनपुर एरिया, बनगाँव, बनत, बनवारी-बसन्त, बनीडीह, बभनी, बम्बई, बम्हनी, बरदापालीम, बरला अलीगढ़, बराखड़कलाँ, बराराबुजुर्ग, बरिगाँवाँ, बरेटा, बरेरा, बरेली, बरोरी, बरौंधा,

बलवीरनगर, बलरामपुर, बलुआँ, बसन्त, बसन्तपुरी, बसहा, बसुका, बहराइच, बहरागोड़ा, बहेराकलाँ, बाँका, बाँकी, बाँगरोद, बाँदरी, बाँसवाड़ा, बाँसी, बागा, बागोरी, बाघमऊ, बाड़ी, बाढ़, बानापुरा, बानीपुर, बानीयम बाड़ी, बापूधाम, बाबरमंडी, बाबरपुरमंडी, बाबूबाजार, बारा, बाराबंकी, बारी, बारू, बाली, बालीबंध, बालेर, बालेतारा, बाल्लोह, बासदेवासिंधिया, बिजाड़, बिरहाना, बिलग्राम, बिलासपुर, बिलौनाकला, बिशुनपुर, बिशुनपुरा, बिहुआ, बीकानेर, बीड़, बीदर, बीना, बीबीगंज, बीसुनपुर, बुडली, बुद्धिकामना, बुन्देली, बूरमाजारा, बेतियाहाता, बेनीकामा, बेरावल, बेलनगंज, बेलरगाँव, बेलियाघाटा, बेलूडीहा, बेहतामुजावर, बोकठा, बोदरी, बोनियापट्टी, बोरादह, बोराबड, बोरिया, बौलाई, ब्रह्मपुर, ब्रह्मपुरी, ब्राह्मणवाड़ाथड़ी, ब्राह्मणविगहा, ब्यावर, भंडरी, भँवरगढ़, भगदरी, भगवतगढ़, भगोसामखदूमपुर, भगौरा, भगौसा, भटकरजा, भटकरिया, भटवा, भद्रपुर, भदैनी, भदौरा, भरकचो, भरतपुर, भरुआसुमेरपुर, भरुच, भरैला, भलन्दा, भवानीमंडी, भवानी, भाटापारा, भादरा, भाभानगर, भिंडासरी, भिलाई, भिवानी, भीमगंजमंडी, भीममंडी, भुरकुण्डा, भुल्लाराई, भुसावल, भूपालपुरा, भूरंगखेल, भूरमण्डी, भेदगाँव, भेड़वन, भेलवाडीह, भैंसवाबाजार, भैंसा, भैंसाझार, भैंसादरहा, भैरहवाँ, भैरोगंज, भैंसाना, भोजपुर, भोजूडीह, भोपा, भोपाल, भौंडा, भौती, भ्रमरपुर, मंगलाज, मंजेश्वर, मंजोखरा, मंझनपुर, मंदर, मंदलाली, मंदसौर, मंडी, मंडीपाड़ा, मउदहा, मऊ जं०, मकरोनियाँ, मखमेलपुर, मगरापार, मटिहरा, मडलौंडा मंडी, मणिपुर, मदनगंज, मद्रास, मदुराई, मधुबनी, मधुपुर, मधेपुर, मननपुरमोरसंड, मनिगाँव, मनीमाजरा, मनुस्यारी, मरमी, मरहतिया, मरैला अकबरपुर, मलकीपुर, मलकलीपुर डेवर्दा, मलकाजगिरि, मलगँवा, मलसीसर, मल्लीताल, मलाड, मलारनाचौड़, मवइया, मवई, मवई-बुजुर्ग, मसीहागंज, महतानी, महना, महनियावास, महम, महराना, महरोली, महावीरनगर, महादेवाँ, महाराणाप्रतापनगर, महासमुद्र, महिन्दवारा, महुआ, महुआखेड़ा, महुआरा, महुडर, महु, महूकलाँ, महूनाका, महौली, मांगरौली, मांडल, मांडवी, मांडा, माछरा, माधवगंज, माधवपुर, माधवपुरी, माधोगंज,

माधोपुर गोविन्द, मानसमण्डल, मानसा, मामूभान्जा, मायना, मारवाडासेकी, मालपुर, मालयौन, मालवीयनगर, मालाकोली, मलिनियाँदिरा, मालीपुर, मालेरकोटला, मिन्डासरी, मिरजानहाट, मिरिक, मिल्की, मीनापाड़ा, मीरपुर, मीरपुरसिरोही, मुण्डरदेही, मुगलसराय, मुजप्फरपुर, मुड़ीवाड़ा, मुतौर, मुकुण्डा, मुल्लीचन्दना, मुहदी, मुरादनगर, मुरादाबाद, मुरार, मुरी, मुरैना, मुल्लापुर, मुहम्मदाबाद, मुहम्दाबाद गोहना, मुण्डी, मूनस्यारी, मूरतपुर, मूली, मेंहदी, मेवली, मेहकर, मेहसाना, मैठानी, मोजरी, मोठीलार, मोतीझील, मोतीनगर, मोशी, मोहाना, मौधिया, मौरडू, म्याऊ, यमुनानगर, येवदा, येवला, रंगोहटा, रंजीतनगर, रघुनाथपुर, रजउर, रजुराबाजार, रठेरा, रतननगर, रतनदास, रतलाम, रबड़हरा, रबपुरा, रबपुरापाली, रमनीपुर, रमपुरवा बाजार, रहुआसंग्राम, रांगिया, रांची, राउतपुर, राउरकेला, राजनाँदगाँव, राजपिपरी, राजमहल, राजाजीनगर, राजापुर, राजेगाँव फार्म, राठधना, राणीसती रोड, राणेवेन्नूर, रामकोट, रामगढ़, रामगढ़कैट, रामगढ़ी, रामगाँव, रामगुड़ीपारा, रामचौरा, रामतीर्थ, रामनगर, रामपुरकलाँ, रामपुरा, रामानन्दनगर, रायथला, रायपुर, रायसिंहनगर, रालैया, रावत-भाटा, रावतसर, रासना, रासीका डेरा, रुड़की, रुधौली, रेवाड़ी, रोपड़, रोसड़ा, रौसरा, रौसीपुरखुर्द, रौनियाँ, लंका, लक्ष्मणगंज, लक्ष्मणबाग, लक्ष्मीनगर, लखनऊ, लखनपुर, लखनौडीह, लखोदिया, लगरगवाँ, लतीफपुर, लदूना, ललितपुर, लवनापार, लवाइच, लश्कर, लाइनाबाजार, लाखनडिहरा, लागलेरी, लाडनूँ, लातूर, लालगंज, लालगढ़, लालसी, लालाछपरा, लावन, लुहारी, लोइसिंहा, लोइंग, लोहारी, लोहारपुरा, लौहर फरना, वजीरपुर, वामोरीशाला, वाराणसी, विक्रमपुर, विकासनगर, विकोली, विक्रोती, विदिशा, विमड़ी, विमौती, विरार, विरेंधी, विवेकानन्दपुरी, विशौनी, विश्वनाथपुर, विष्णुपुर, विष्णुपुरी, वेराघाट, वैहबलपुर, वोरावद, वोलायखुर्द, व्रजघात, व्यंकटेशनगर, व्यवहार बाग, शंकरनगर, शंकरपुर, शंकरबाग, शंकर बिगहा, शकरा, शकूरबस्ती, शबरी-आश्रम, शरहना, शहडोल, शहद,

शहरना, शांतीनगर, शादीपुर, शास्त्रीनगर, शाहजहाँपुर, शाहदरा, शाहपुरतहका, शाहबाद मारकंडा, शाहाबाद, शाहोपुर बरमा, शिकारपुर, शिकोहाबाद, शिरूर, शिवगंज, शिवाजीनगर, शुभकहर, शोगाँव, शेटगेरी, शेवतर, शेरुणा, शोकहरा, शोलागुडी, श्यामाश्रय, श्रीकृष्णपुरमल्ला, श्रीगंगानगर, श्रीनगर, श्रीनगरपुरी, श्रीरामपुर, श्रीविद्यानगर, श्रीवैकुण्ठम्, श्रीशिरनीया, संगरिया, संडीला, संतोषीपारा, संतोषीपारा-धुरा, संभलपुर, संभाजीनगर, सइतियापुर, सकरा, सगवाली, सगासपुर, सघोट, सढोरा, सतना, सतारा, सथरा, सदूलगंज, सनईचौराहा, सनखेड़ा, सपोटरा, सफीपुर, सफीलगुड़ा, सराड़ा, सर्रा, सरीला, सरोजनीनगर, सलेम, सलेमपुर, सलैया, सवाई, सवाईमाधोपुर, सहपऊ, सहसापुर, सहारनपुर, सांकरी, साँगानेर, सांगारवेड़ा कला, साकेत नगर, साखरवाड़ी, साठवाँ, साड़म, साधपुर, साफियाबाद, सालनेर, सालवीबाखल, सालिमपुर, साल्हेघोरी, सावनेर, सावरमती, सासन, सासाराम, सिंघल, सिकरावी, सिधिया, सिद्धबरौलिया, सिमरी, सिमरोल, सिरोही, सिरौज, सिवनी, सिवहारा, सीकर, सीतामढ़ी, सीतामढ़ीबाजार, सीथल, सीसवाली, सीसोहार, सुंदरपुर, सुगराखंड, सुठालिया, सुथारोका वास, सुदामानगर, सुदामापुरी, सुनरमा, सुनाम, सुनाफाट, सुपौल, सुभाषबाग, सुरेन्द्रनगर, सुरेबान, सुलह, सुल्तानपुर, सुल्तानी, सूरत, सूरा, सूलिया, सेंठा, सेंदुआर, सेऊ, सेखुई, सेमरा, सेमरौर, सेवर, सेहरी, सोजत, सोतीटोला, सोधेटोला, सोनपुर, सोनपुरा, सोनपेठ, सोनीपत, सोनीहरलाल, सोफता, सोरमपुर, सोलापुर, सोहना, सौरईयाँ, स्थाणा, स्नेहनगर, खाल्पा, हताईखेड़ा, हथीयह, हनुमन्ती, हरदाग, हरनी, हरपुरखेड़ी, हरगूलालरोड, हरिपुर, हरिद्वार, हरिनगर, हरिपुरडीहटोल, हरिहरपुरबैदौलिया, हरीहर, हरीपुरनायक, हसुआ, हाँफा, हाजीपुर, हाथरस, हावड़ा, हास्पीटल, हिंगोली, हिगौनिया, हिंडोरिया, हिंडौनसिटी, हिंदूवाड़ा, हिब्बा, हिम्मतगंज, हिसार, हीनूँ, हीरावाड़ी, हुड़राही, हुमायूँपुर, हेरुल, हैठीवाली, हैदराबाद, होलियाकावास, होशियारपुर, होसिर, ९९ ए०पी०ओ० ।



श्री भगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

आज सारे संसारमें जीवनकी जटिलताएँ बढ़ती जा रही हैं। अधिकतर लोग अपनी असीमित भौतिक आवश्यकताओं-की पूर्ति करनेमें संलग्न हैं। वे अपने क्षुद्र स्वार्थकी सिद्धिके लिये दूसरोंका अहित करनेमें भी कोई संकोच नहीं करते। परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य, कलह और हिंसाके वातावरणमें अशान्त स्थिति है। भारतसे बाहर अन्य देशोंमें तो यह स्थिति और भी भयानक है। अधिकतर लोग मानसिक तनावके शिकार बनते जा रहे हैं। कलिका प्रकोप सर्वत्र व्याप्त है। प्रश्न यह होता है कि इस स्थितिका समाधान क्या है? ऋषि-महर्षि, मुनि और शास्त्रोंने इस स्थितिको अपनी अन्तर्दृष्टिसे देखकर बहुत पहलेसे यह घोषित कर दिया है कि 'कलिकालमें मानव-कल्याण और विश्व-शान्तिके लिये श्रीहरिके नामके अतिरिक्त कोई दूसरा सुलभ साधन नहीं है।' इसीलिये यह बात जोर देकर शास्त्रोंमें कही गयी है कि 'भगवान् श्रीहरिका नाम ही एकमात्र जीवन है। कलियुगमें इसके अतिरिक्त कोई दूसरा सहारा—चारा नहीं है'—

हरेनामैव नामैव नामैव मम जीवनम् ।

कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

(बृहन्नारदीयपुराण)

हमारे शास्त्रोंके अतिरिक्त अनुभवी संत-महात्माओंने भी भगवान्के नाम-स्मरण-जपको कलियुगका मुख्य धर्म (ऐहिक-पारलौकिक कल्याणकारी कर्तव्य) माना है। इतना ही नहीं, जगत्के समस्त धर्म-सम्प्रदाय भी किसी-न-किसी रूपमें भगवान्के नाम-स्मरण-जपके महत्त्वको प्रतिपादित करते हैं। नामके जप-स्मरणमें देश-काल-पात्रका कोई भी नियम नहीं है। श्रीचैतन्यमहाप्रभुने भी कहा है—

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-

स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः ।

'हे भगवन्! आपने लोगोंकी विभिन्न रुचि देखकर नित्य-सिद्ध अपने बहुत-से नाम कृपा करके प्रकट कर दिये। प्रत्येक नाममें अपनी सारी शक्ति भर दी और नाम-स्मरणमें देश-काल-पात्रका कोई नियम भी नहीं रखा।'

विपत्तिसे त्राण पानेके लिये आज श्रीभगवन्नामका स्मरण ही एकमात्र उपाय है। ऐसा कौन-सा विघ्न है, जो भगवन्नाम-स्मरणसे नहीं टल सकता और ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो नहीं मिल सकती? इस कलिकालमें मङ्गलमय भगवान्के आश्रयके लिये भगवन्नामका सहारा ही एकमात्र अवलम्बन है। अतएव भारतवर्ष एवं समस्त विश्वके कल्याणके लिये, लौकिक अभ्युदय और पारलौकिक सुख-शान्तिके लिये तथा साधकोंके परम लक्ष्य एवं मानव-जीवनके परम ध्येय भगवान्की प्राप्तिके लिये सबको भगवन्नामका स्मरण, जप, कीर्तन करना चाहिये।

अतः 'कल्याण'के भाग्यवान् ग्राहक-अनुग्राहक, पाठक-पाठिकाएँ स्वयं तथा अपने इष्ट-मित्रोंसे प्रतिवर्ष भगवन्नाम-जप करते-कराते आये हैं।

गत वर्ष तीस करोड़ नामजपकी प्रार्थना की गयी थी। प्रतिवर्षकी भाँति यद्यपि इस वर्ष भी लोगोंने बड़े उत्साहसे भगवन्नामका जप किया है तथा अट्ठाईस करोड़ चालीस लाखसे कुछ अधिक मन्त्र-नाम-जपकी सूचनाएँ विभिन्न स्थानोंसे हमें प्राप्त हुई हैं, जिन्हें इसी अङ्कमें अन्यत्र प्रकाशित किया गया है। पिछले वर्ष यह नाम-जपकी संख्या लगभग साढ़े चौबीस करोड़ थी। अधिक जपके लिये हमारी प्रार्थनापर यद्यपि जपकी संख्या कुछ अधिक बढ़ी है तथापि वह तीस करोड़ नहीं पहुँच पायी है। अतः आप महानुभावोंसे पुनः इस वर्ष तीस करोड़ भगवन्नाम-मन्त्र-जपकी प्रार्थना की जा रही है। यह नाम-जप और अधिक उत्साहसे करना तथा करवाना चाहिये, जिससे भगवन्नाम-जपकी संख्यामें उत्तरोत्तर वृद्धि हो।

निवेदन है कि पूर्ववत् कार्तिक शुक्ल पूर्णिमासे जप आरम्भ किया जाय और चैत्र शुक्ल पूर्णिमा वि० सं० २०४८ तक पूरा किया जाय। पूरे पाँच महीनेका समय है।

भगवान्के इस प्रभावशाली नामका जप स्त्री-पुरुष, ब्राह्मण-शूद्र सभी कर सकते हैं। इसलिये 'कल्याण' के भगवद्विश्वासी पाठक-पाठिकाओंसे हाथ जोड़कर विनयपूर्वक प्रार्थना की जाती है कि वे कृपापूर्वक सबके परम कल्याणकी भावनासे स्वयं अधिक-से-अधिक जप करें और प्रेमके साथ विशेष चेष्टा करके दूसरोंसे भी जप करवायें। नियमादि सदाकी भाँति ही हैं—

१-जप प्रारम्भ करनेकी तिथि कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा (दिनाङ्क २।११।१९९० ई०) शुक्रवार रखी गयी है। इसके बाद भी किसी भी तिथिसे जप आरम्भ कर सकते हैं, परंतु उसकी पूर्ति चैत्र शुक्ल पूर्णिमा सं० २०४८ को कर देनी चाहिये। इसके आगे भी अधिक जप किया जाय तो और उत्तम है।

२-सभी वर्णों, सभी जातियों और सभी आश्रमोंके नर-नारी, बालक-वृद्ध, युवा इस मन्त्रका जप कर सकते हैं।

३-एक व्यक्तिको प्रतिदिन उपरिनिर्दिष्ट मन्त्रका कम-से-कम १०८ बार (एक माला) जप तो अवश्य ही करना चाहिये, अधिक तो कितना भी किया जा सकता है।

४-संख्याकी गिनती किसी भी प्रकारकी मालासे अथवा अंगुलियोंपर या किसी अन्य प्रकारसे भी रखी जा सकती है। तुलसीकी माला उत्तम होगी।

५-यह आवश्यक नहीं है कि अमुक समयपर आसनपर बैठकर ही जप किया जाय। प्रातःकाल उठनेके समयसे लेकर चलते-फिरते, उठते-बैठते और काम करते हुए सब समय—सोनेके समयतक इस मन्त्रका जप किया जा सकता है।

६-बीमारी या अन्य किसी कारणवश जप न हो सके और क्रम टूटने लगे तो किसी दूसरे सज्जनसे जप करवा लेना चाहिये। पर यदि ऐसा न हो सके तो बादमें अधिक जप करके उस कमीको पूरा कर लेना चाहिये।

७-संख्या मन्त्रकी होनी चाहिये, नामकी नहीं; उदाहरणके रूपमें—

हे राम हे राम राम राम हे हे।
हे कृष्ण हे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे हे॥

—सोलह नामके इस मन्त्रकी एक माला प्रतिदिन जपें तो उसके प्रतिमन्त्रजपकी संख्या १०८ होती है, जिसमें भूल-चूकके लिये ८ मन्त्र बाद कर देनेपर गिनतीके लिये एक सौ मन्त्र रह जाते हैं। अतएव जिस दिन जो भाई-बहन मन्त्र-जप आरम्भ करें, उस दिनसे चैत्र शुक्ल पूर्णिमातकके मन्त्रोंका हिसाब इसी क्रमसे जोड़कर हमें अन्तमें सूचित करें। सूचना भेजनेवाले सज्जन जपकी संख्याकी सूचना ही भेजें, जप करनेवालोंके नाम आदि नहीं। सूचना भेजनेवालोंको अपना नाम-पता स्पष्ट अक्षरोंमें अवश्य लिखना चाहिये।

८-प्रथम सूचना तो मन्त्र-जप प्रारम्भ करनेपर भेजी जाय, जिसमें चैत्र पूर्णिमातक जितनी जप-संख्याका संकल्प किया हो उसका उल्लेख रहे और दूसरी बार जप आरम्भ करनेकी तिथिसे लेकर चैत्र पूर्णिमातक हुए कुल जपकी संख्या उल्लिखित हो।

९-जप करनेवाले सज्जनको सूचना भेजने-भिजवानेमें इस बातका संकोच नहीं करना चाहिये कि जपकी संख्या प्रकट करनेसे उसका प्रभाव नष्ट हो जायगा। स्मरण रहे, ऐसे सामूहिक अनुष्ठान परस्पर उत्साहवृद्धिमें सहायक होकर और प्रभावक बनते हैं।

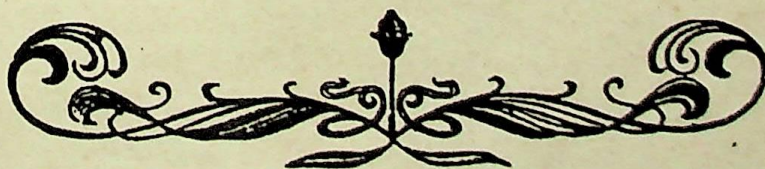
१०-सूचना संस्कृत, हिन्दी, मराठी, मारवाड़ी, गुजराती, बंगला, अंग्रेजी, उर्दूमें भेजी जा सकती है।

सूचना भेजनेका पता—

‘नामजप-कार्यालय’, द्वारा—‘कल्याण’-सम्पादकीय-विभाग, गीताप्रेस, पो०-गीताप्रेस—२७३००५ (गोरखपुर)

प्रार्थी—

राधेश्याम खेमका
सम्पादक-‘कल्याण’



आवश्यक निवेदन

‘कल्याण’के गत सौर श्रावण, वि०-सं० २०४७ (अगस्त १९९०)के पाँचवें अङ्ककी पृष्ठ-संख्या ५६८ पर ग्राहक-संख्या-परिवर्तनके विषयमें इस आशयकी सूचना दी गयी थी कि ‘आगामी सौर भाद्रपद, वि०-सं० २०४७ (सितम्बर १९९०)के अङ्कसे ‘कल्याण’के समस्त ग्राहकोंके पते प्रदेश-क्रमसे आवंटित करके उक्त अङ्कके रैपरपर कम्प्यूटरद्वारा नयी ग्राहक-संख्या अङ्कित की जायगी’, किंतु कतिपय कारणोंसे तदनुसार ‘नयी ग्राहक-संख्या’ अब सौर भाद्रपद, वि०-सं० २०४७ (सितम्बर १९९०)के अङ्कसे आवंटित नहीं की जा सकेगी। परंतु निकट भविष्यमें शीघ्र ही इस योजनाके, आगामी किसी अङ्कसे क्रियान्वित हो जानेकी आशा है।

अतः समस्त ग्राहक महानुभावोंसे पुनः निवेदन है कि वे आगामी किसी मासके अङ्कपर कम्प्यूटरद्वारा छपी अपनी उस नयी ग्राहक-संख्याको देखकर भविष्यमें समस्त प्रकारके पत्राचार और आवश्यक प्रयोग-हेतु कृपया उसे अवश्य नोट कर लें और सदैव अपनी ‘नयी ग्राहक-संख्या’का ही प्रयोग करें। इस योजनाकी सफलताके लिये ‘कल्याण’को आप सभी ग्राहक महानुभावोंका सक्रिय सहयोग अपेक्षित एवं मूल्यवान् होगा।

व्यवस्थापक—‘कल्याण’ गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

Sādhaka-Saṅjīvanī

(A commentary by Swami Sri Ramsukhadasji Maharaja)

on

ŚRĪMADBHAGAVADGĪTĀ

It is the ninth edition of the book presented before its readers. A marvellous commentary, unravelling the social, religious and philosophical ravellings with ease, command and authority. A worth-reading treatise, 1166 full pages, complete Gītā in small letters on the last four additional pages, 18 coloured illustrations with 17 more line-sketches, make the book very valuable. In four coloured wrapper under a plastic jacket makes it quite decorative. Having a nominal price of Rs. 50.00, the book is worth having in any library domestic or otherwise.

ŚRĪMADBHAGAVADGĪTĀ

(Tattva-Vivecanī Tikā by Sri Jayadayal Goyandka)

The sixth edition of Tattva-Vivecanī Tikā is out of press now. The bold type, beautiful and accurate printing have enhanced its utility. It is free from the shortcomings of its previous editions.

Gītā is decidedly the cream of Indian metaphysical knowledge and this Tikā deals with even the most delicate problems of socio-philosophical nature while explaining the subject matter of the book. Containing 736 pages with four beautiful coloured illustrations along with many more line-sketches, the book has become very illustrating and comprehensive. The four-coloured wrapper under a plastic jacket adds its beauty and attraction. With a nominal price of Rs. 20.00, it is unique.

The Manager
Gita Press, Gorakhpur—273005